ISSN: 3049-2211

कृषक मंच

मासिक कृषि पत्रिका

खंड-1 अंक- 10, अक्टूबर-2025

कृषक मंच

मासिक कृषि पत्रिका

ISSN: 3049-2211

सम्पादक मंडल

डा. देवराज सिंह

मुख्य सम्पादक
सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष
सब्जी विज्ञान विभाग
कृषि विज्ञान विभाग, इनवर्टिस विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)।

प्रिया पाण्डेय

सहायक मुख्य सम्पादक
शोधार्थी
ए.के.एस. विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)।

सहायक सम्पादक

डा. विक्रमा प्रसाद पाण्डेय
पूर्व अधिष्ठाता (उद्यान महाविद्यालय)
आ. न. दे. कृ. एवं प्रौ. वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)।

डा. अरविन्द कुमार चौरसिया
सहायक प्राध्यापक (उद्यान विज्ञान)
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)।

डा. महेन्द्र कुमार यादव
सहायक प्राध्यापक (सब्जी विज्ञान)
आर.एन.बी. ग्लोबल विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)।

डा. वर्तिका सिंह
सहायक प्राध्यापक (फल विज्ञान)
आई.टी.एम. विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)।

डा. सचि गुप्ता
सहायक प्राध्यापक (पुष्प विज्ञान)
आ. न. दे. कृ. एवं प्रौ. वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)।

डा. रविकेश कुमार पाल
सहायक प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)
रामा विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)।

डा. सरिता
सहायक प्राध्यापक (पौध रोग विज्ञान)
आर.एन.बी. ग्लोबल विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)।

डा. रविशंकर
सहायक प्राध्यापक (कीट विज्ञान)
स.व.भा.प.कृ. एवं प्रौ. वि.वि., मेरठ (उ.प्र.)।

डा. देवेश तिवारी
सहायक प्राध्यापक (उद्यान विज्ञान)
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, तूरा कैंपस (मेघालय)।

डा. कुमार अंशुमान
सहायक प्राध्यापक (मृदा विज्ञान)
के.एन.आई.पी.एस.एस., सुल्तानपुर (उ.प्र.)।

डा. मंजीत कुमार
सहायक प्राध्यापक
लिंगायस विद्यापीठ, फरीदाबाद, हरियाणा।

डा. विवेक पाण्डेय
सहायक प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)
इनवर्टिस विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)।

श्री कल्याण सिंह
स्वतंत्र लेखक/शोधार्थी
बांदा कृ. एवं प्रौ. वि.वि., बांदा (उ.प्र.)।

श्री शिवशंकर पटेल
शोधार्थी
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)।

ISSN: 3049-2211

विषय वस्तु

क्र.सं.	विवरण	पृष्ठ सं.
1	दुग्ध पशुओं और बछड़ों के लिए शीतकालीन प्रबंधन का महत्व।	4-6
2	सहकारी खेती: छोटे किसानों के लिए एक समाधान।	7-9
3	मूल ग्रंथि सूत्रकृमि (रूट-नॉट नेमाटोड) के प्रबंधन में पौध-वृद्धि संवर्धक मूल- जीवाणुओं (पी.जी.पी.आर.) का महत्व और उपयोगिता।	10-12
4	सूखे और बाढ़ प्रबंधन हेतु सैटेलाइट आधारित प्रारंभिक चेतावनी प्रणाली।	13-16
5	टमाटर फल छेदक (Helicoverpa armigera) का एकीकृत कीट प्रबंधन।	17-18
6	स्ट्रॉबेरी की खेती में मल्चिंग द्वारा खरपतवार प्रबंधन।	19-20
7	फल वृक्षों में माइक्रोबायोम इंजीनियरिंग: जड़ क्षेत्र के सूक्ष्मजीवों की भूमिका।	21-24
8	अमरूद में प्रमुख कीटों का समेकित प्रबंन्धन।	25-28
9	भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान।	29-31
10	कृषि नवाचारों का आईसीटी-आधारित विस्तार मॉडल के साथ एकीकरण: व्यापक और स्मार्ट खेती की दिशा में एक मार्ग।	32-35
11	अमलतास (*Cassia fistula*) की जैविक, पारिस्थितिक एवं वानिकी विशेषताएँ।	36-38
12	अर्जुन वृक्ष की जैविक वानिकी विशेषताएँ एवं पुनरुत्पादन विधियाँ।	39-41
13	आँवला वृक्ष की पारिस्थितिकी, नर्सरी तकनीक एवं उपयोगिता पर अध्ययन।	42-44
14	करंज (*Pongamia pinnata*): एक बहुउपयोगी नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाला वृक्ष।	45-47
15	मेलाइना आरबोरिया (*Gmelina arborea*) का वानिकी महत्व एवं पुनरुत्पादन तकनीक।	48-51
16	पोषण संवेदी कृषि का सार्वजनिक स्वास्थ्य में कृषि विस्तार सेवाओं की भूमिका एवं उनका योगदान।	52-53
17	पोली हाऊस मे शिमला मिर्च का उत्पादन ।	54-55

दुग्ध पशुओं और बछड़ों के लिए शीतकालीन प्रबंधन का महत्व

डा. अंजली
गोवंश कार्यिकी एवं प्रजनन विभाग
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय गोवंश अनुसंधान संस्थान, ग्रास फार्म रोड, मेरठ (उत्तर प्रदेश)

भारत अपने विशाल और विविध भौगोलिक परिदृश्य के साथ कई जलवायु क्षेत्रों में फैला हुआ है, जो कृषि और पशुपालन के लिए अद्वितीय चुनौतियां प्रस्तुत करता है। इनमें से शीतकालीन मौसम डेयरी किसानों के लिए विशेष रूप से चुनौतीपूर्ण होता है, क्योंकि ठंड के महीनों में डेयरी पशुओं के स्वास्थ्य और उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। विशेष रूप से बछड़ों और वयस्क डेयरी मवेशियों के लिए सर्दी कई समस्याएं लेकर आती है, जैसे भोजन की कम खपत, ठंड के तनाव के प्रति संवेदनशीलता और बीमारियों का बढ़ा हुआ खतरा।

इन जानवरों के अच्छे स्वास्थ्य और उत्पादकता सुनिश्चित करने के लिए उचित शीतकालीन प्रबंधन प्रथाओं का पालन आवश्यक है। सर्दियों के दौरान भारत के विभिन्न क्षेत्रों, विशेषकर उत्तरी, पहाड़ी और उप-पर्वतीय इलाकों में तापमान में काफी गिरावट आती है, जिससे पशुधन के लिए कठोर परिस्थितियां उत्पन्न होती हैं। ऐसे में डेयरी किसानों को ठंड के प्रभाव को कम करने और अपने झुंड के स्वास्थ्य और उत्पादकता को बनाए रखने के लिए प्रभावी रणनीतियां अपनानी चाहिए। यह लेख बछड़ों और वयस्क डेयरी पशुओं के शीतकालीन प्रबंधन के प्रमुख पहलुओं का पता लगाता है और भारत में सतत डेयरी उत्पादन बनाए रखने के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

ठंड के तापमान का डेयरी पशुओं पर प्रभाव

थर्मल तनाव (Thermal Stress):

गाय, भैंस और बछड़ों सहित डेयरी पशु सर्दियों के महीनों में थर्मल तनाव के प्रति संवेदनशील होते हैं। हालांकि ये पशु अपने शरीर के तापमान को स्वाभाविक रूप से नियंत्रित करने की क्षमता रखते हैं, लेकिन लंबे समय तक ठंडे तापमान के संपर्क में रहने से ऊर्जा की खपत बढ़ जाती है। यह ऊर्जा दूध उत्पादन और विकास के बजाय शरीर की सामान्य गर्मी बनाए रखने में लग जाती है, जिससे उनकी उत्पादकता कम हो जाती है।

भूख में कमी:

सर्दियों में ठंड के कारण डेयरी पशुओं में भोजन की खपत कम हो जाती है। भोजन की खपत में यह गिरावट पशु के पोषण संबंधी

ISSN: 3049-2211

आवश्यकताओं को पूरा करने में बाधा डालती है, जिससे वजन में कमी और दूध उत्पादन में गिरावट आती है। इसके अलावा, सर्दियों में कम कैलोरी वाला आहार प्रजनन और प्रतिरक्षा प्रणाली को प्रभावित कर सकता है।

स्वास्थ्य संबंधी चिंताएं:

लंबे समय तक ठंड के संपर्क में रहने से पशुओं की प्रतिरक्षा प्रणाली कमजोर हो जाती है, जिससे वे न्यूमोनिया, मैस्टाइटिस (स्तन संक्रमण) और फ्रॉस्टबाइट जैसे पैरों से संबंधित रोगों के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाते हैं। ये स्वास्थ्य समस्याएं न केवल दूध उत्पादन को कम करती हैं, बल्कि पशुचिकित्सा देखभाल की लागत को भी बढ़ा देती हैं।

कम दिन का समय और घटती उत्पादकता

दूध उत्पादन में कमी:

सर्दियों के दौरान दिन के समय की कमी और धूप के संपर्क में कमी का डेयरी पशुओं के दूध उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। गाय और भैंस जैसे डेयरी पशु प्राकृतिक प्रकाश पर निर्भर रहते हैं, जो हार्मोनल गतिविधि को उत्तेजित करता है और सीधे दूध संश्लेषण को प्रभावित करता है। सर्दियों में खराब प्रकाश व्यवस्था के कारण दुग्ध स्राव में बाधा उत्पन्न होती है, जिससे दूध उत्पादन में गिरावट होती है।

प्रजनन और प्रजनन संबंधी समस्याएं:

कम दिन के समय का प्रभाव पशुओं के प्रजनन चक्र पर भी पड़ता है। प्राकृतिक एस्ट्रस चक्र (गरमी चक्र) अनियमित हो सकता है, जिससे प्रजनन में देरी होती है और गरमी का पता (heat detection/Estrous) लगाना कठिन हो जाता है। खराब प्रजनन प्रदर्शन से बछड़ों के जन्म दर में गिरावट आती है और सर्दियों के महीनों में स्वस्थ बछड़ों की संख्या कम हो जाती है।

बढ़ी हुई नमी और पर्यावरणीय चुनौतियाँ

नमी में वृद्धि:

कम तापमान के साथ-साथ हिमालय की तलहटी जैसे क्षेत्रों में सर्दियों के दौरान नमी का स्तर बढ़ जाता है, जिससे डेयरी पशुओं के सामने चुनौतियाँ और भी गंभीर हो जाती हैं। अधिक नमी ठंड के तनाव (कोल्ड स्ट्रेस) को बढ़ा सकती है, जिससे फ्रॉस्टबाइट (शीतदंश) और गीले बिस्तर की समस्या उत्पन्न होती है। गीले बिस्तर बैक्टीरियल और फंगल संक्रमण के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करते हैं।

श्वसन रोगों का जोखिम:

ठंडे, गीले और खराब हवादार आश्रय श्वसन संबंधी समस्याओं के लिए उपजाऊ स्थान बन जाते हैं। बिस्तर सामग्री में अधिक नमी और ठंडी हवा के प्रवाह की उपस्थिति श्वसन रोगों को बढ़ावा दे सकती है, जिससे पशुओं की उत्पादकता कम हो जाती है।

उत्तर भारत में क्षेत्र-विशिष्ट चुनौतियाँ

- उत्तर भारत के राज्यों जैसे हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, उत्तराखंड, पंजाब और हरियाणा में सर्दियों के दौरान चुनौतियाँ अत्यधिक ठंड की वजह से और भी बढ़ जाती हैं। इन क्षेत्रों में कठोर सर्दियाँ होती हैं, जहाँ तापमान अक्सर शून्य से नीचे चला जाता है।
- **आधारभूत ढाँचे की सीमाएँ:** पारंपरिक पशु आश्रयगृह अत्यधिक ठंड से पशुओं को बचाने के लिए पर्याप्त नहीं होते हैं, जिससे बछड़ों और छोटे पशुओं में मृत्यु दर बढ़ जाती है।
- **चारे की सीमित उपलब्धता:** इन क्षेत्रों की सर्दियाँ हरे चारे और ताजे आहार की कमी से प्रभावित होती हैं, जिससे डेयरी पशुओं की पोषण संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करना मुश्किल हो जाता है। किसान आमतौर पर सूखी घास, साइलज और अन्य संरक्षित आहार पर निर्भर होते हैं, जो हमेशा पोषण की जरूरतें पूरी नहीं कर पाते।
- **ऊर्जा की उच्च माँग:** इन ठंडे क्षेत्रों के पशुओं को अपने शरीर के तापमान को बनाए रखने के लिए अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। संतुलित पोषण सर्दियों के प्रबंधन का एक आवश्यक हिस्सा बन जाता है।

शीतकालीन प्रबंधन प्रक्रियाओं की भूमिका

- **पोषण प्रबंधन**– सर्दियों में ऊर्जा की आवश्यकता बढ़ जाती है, इसलिए उच्च ऊर्जा व प्रोटीनयुक्त चारा, हरा चारा (बरसीम, ओट्स, जई) एवं मिनरल मिक्सचर का नियमित प्रबंधन आवश्यक है।
- **पानी का प्रबंधन**– ठंडे मौसम में पशु पानी कम पीते हैं, अतः गुनगुना या सामान्य तापमान का स्वच्छ पानी उपलब्ध कराना जरूरी है।
- **आवास प्रबंधन**– पशुओं को ठंडी हवाओं से बचाने के लिए बाड़ों में पर्दा, प्लास्टिक शीट या घास–फूस की दीवारें लगाना तथा फर्श को सूखा रखना आवश्यक है।
- **तापमान नियंत्रण**– नवजात बछड़ों और दुग्धारू पशुओं के लिए उचित तापमान बनाए रखना, ब्लैंकेट या बोरी से ढकना तथा हीटर/अंगीठी का सुरक्षित उपयोग करना चाहिए।
- **स्वास्थ्य प्रबंधन**– ठंड में श्वसन रोग, न्यूमोनिया और परजीवी संक्रमण की संभावना अधिक होती है, इसलिए समय पर टीकाकरण और कृमिनाशक दवाओं का उपयोग करना चाहिए।
- **दुग्ध उत्पादन पर प्रभाव**– सही शीतकालीन प्रबंधन से दुग्ध उत्पादन स्थिर रहता है तथा ठंड से होने वाली ऊर्जा की कमी पूरी होती है।
- **नवजात शिशु संरक्षण**– जन्म के तुरंत बाद बछड़े को सुखाना, गुनगुना कोलोस्ट्रम पिलाना और ठंड से बचाव के लिए गर्म वातावरण उपलब्ध कराना आवश्यक है।
- **कार्य क्षमता और प्रजनन स्वास्थ्य**– सर्दियों में संतुलित आहार और उचित देखभाल से पशुओं की कार्य क्षमता एवं प्रजनन क्षमता बनी रहती है।

प्रौद्योगिकी हस्तक्षेप

तकनीकी प्रगति ने शीतकालीन प्रबंधन प्रथाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। स्मार्ट मॉनिटरिंग सिस्टम, स्वचालित फीडर, और जलवायु-नियंत्रित खलिहान डेयरी पशुओं की देखभाल को सटीकता प्रदान करते हैं, जिससे तनाव कम होता है और उत्पादकता बढ़ती है। ये तकनीकें यह सुनिश्चित करती हैं कि पशुओं को कठोर शीतकालीन परिस्थितियों से पर्याप्त सुरक्षा मिले और उनके स्वास्थ्य और उत्पादन परिणामों का अनुकूलन हो।

भारत में डेयरी पशुओं के लिए शीतकालीन प्रबंधन, विशेष रूप से अत्यधिक जलवायु परिस्थितियों वाले क्षेत्रों में, पशुपालन का एक महत्वपूर्ण पहलू है। उत्तर भारतीय राज्यों को सर्दियों के महीनों के दौरान विशेष चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जिनके लिए पशुओं के स्वास्थ्य और उत्पादकता सुनिश्चित करने के लिए सावधानीपूर्वक योजना की आवश्यकता होती है। आधुनिक प्रथाओं को पारंपरिक ज्ञान के साथ एकीकृत करके किसान अपने पशुधन को सर्दियों के प्रतिकूल प्रभावों से बचा सकते हैं, जिससे स्थायी और लाभदायक डेयरी फार्मिंग सुनिश्चित होती है।

****

सहकारी खेती: छोटे किसानों के लिए एक समाधान

[1]कौस्तुभ कदम- एम.एस.सी. शोधार्थी, कृषि विस्तार शिक्षण संभाग, महात्मा फुले कृषि विद्यापीठ, राहुरी (महाराष्ट्र)।
[2]विष्णु गोरे- पी.एच.डी. शोधार्थी, जैवरसायन संभाग, आई.सी.ए.आर.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली।

भारत में आज 85 प्रतिशत से अधिक किसान छोटे और सीमांत वर्ग में आते हैं, जिनके पास केवल 1-2 हेक्टेयर भूमि है। इन किसानों के सामने अनेक चुनौतियां हैं - कम पूंजी, सिंचाई की कमी, गुणवत्तापूर्ण बीजों का अभाव, और बाजार में उचित मूल्य न मिलना। ऐसी स्थिति में सहकारी खेती एक प्रभावशाली समाधान के रूप में उभर रही है जो छोटे किसानों को सशक्त बनाने और उनकी आर्थिक स्थिति सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

सहकारी खेती का मतलब

सहकारी खेती एक ऐसी कृषि पद्धति है जिसमें किसान अपनी भूमि और संसाधनों को मिलाकर सामूहिक रूप से खेती करते हैं। इस व्यवस्था में किसान अपनी जमीन का स्वामित्व बनाए रखते हैं, लेकिन खेती के सभी कार्य - बुवाई से लेकर कटाई तक - सामूहिक रूप से किए जाते हैं। लाभ का वितरण भूमि के योगदान और श्रम के आधार पर होता है।

महाराष्ट्र में मोखाडा क्षेत्र में चल रहे गठ खेती (collective farming) का उदाहरण इसकी सफलता को दर्शाता है। यहां 650 सब्जी उत्पादक किसान, 1000 बागवानी किसान और 200 फूलों की खेती करने वाले किसान सामूहिक खेती में शामिल हैं। इस मॉडल से किसानों की वार्षिक औसत आय 5,000 रुपए से बढ़कर 85,000 रुपए से अधिक हो गई है।

छोटे किसानों की समस्याएं और सहकारी खेती का समाधान

भूमि विखंडन की समस्या:

भारत में औसत भूमि का आकार केवल 1.08 हेक्टेयर है, जो आर्थिक रूप से व्यावहारिक खेती के लिए पर्याप्त नहीं है। छोटे खेतों में

आधुनिक मशीनरी का उपयोग कम लाभकारी होता है और प्रति इकाई लागत बढ़ जाती है। सहकारी खेती में भूमि को मिलाकर बड़े खेत बनाए जाते हैं, जिससे आधुनिक कृषि तकनीकों का बेहतर उपयोग संभव हो जाता है।

पूंजी की कमी:

छोटे किसानों के पास बीज, उर्वरक और आधुनिक उपकरण खरीदने के लिए पर्याप्त पूंजी नहीं होती। सहकारी खेती में संसाधनों को साझा करने से व्यक्तिगत लागत कम हो जाती है और सामूहिक खरीदारी से बेहतर दरें मिलती हैं। IFFCO और KRIBHCO जैसी सहकारी संस्थाएं किसानों को सब्सिडी वाले दरों पर उर्वरक उपलब्ध कराती हैं।

बाजार पहुंच की समस्या:

छोटे किसान अकेले बाजार में अपनी फसल का उचित मूल्य नहीं पा सकते। **NAFED** (राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन संघ) जैसी संस्थाएं किसानों को न्यूनतम समर्थन मूल्य दिलाने में मदद करती हैं। सामूहिक विपणन से किसानों की सौदेबाजी की शक्ति बढ़ती है और बिचौलियों की भूमिका कम हो जाती है।

सफल सहकारी मॉडल

अमूल मॉडल की सफलता:

अमूल का तीन-स्तरीय सहकारी ढांचा दुनियाभर में एक मिसाल बन गया है। गांव स्तर पर दूध संग्रह, जिला स्तर पर प्रसंस्करण और राज्य स्तर पर विपणन का यह मॉडल 36 लाख किसान परिवारों को लाभ पहुंचा रहा है। इस मॉडल से प्रेरणा लेकर अन्य क्षेत्रों में भी सहकारी खेती को बढ़ावा दिया जा सकता है।

किसान उत्पादक संगठन (FPO):

FPO एक आधुनिक सहकारी मॉडल है जिसमें किसान शेयरधारक बनते हैं और कंपनी के मुनाफे में हिस्सेदारी पाते हैं। ये संगठन किसानों को बेहतर इनपुट, तकनीकी सहायता और बाजार पहुंच प्रदान करते हैं। वर्तमान में देश भर में हजारों FPO काम कर रहे हैं और किसानों की आय बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

सहकारी खेती के लाभ

आर्थिक स्थिरता:

सहकारी खेती में किसानों को दैनिक मजदूरी के साथ-साथ फसल की बिक्री से मिलने वाले लाभ में भी हिस्सा मिलता है। यह दोहरी आय व्यवस्था किसानों को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करती है और उन्हें साहूकारों पर निर्भरता से मुक्ति दिलाती है।

तकनीकी उन्नति:

सामूहिक खेती में आधुनिक कृषि तकनीकों का उपयोग संभव हो जाता है। ड्रोन तकनीक, सटीक कृषि (precision farming) और जैविक खेती जैसी उन्नत पद्धतियों को अपनाना आसान हो जाता है। गुजरात के धीरेंद्रकुमार देसाई जैसे प्रगतिशील किसान ड्रिप सिंचाई और टिश्यू कल्चर तकनीक से केले की खेती में 35 टन प्रति एकड़ उत्पादन प्राप्त कर रहे हैं।

पर्यावरण संरक्षण:

सहकारी खेती में प्राकृतिक खेती को बढ़ावा मिलता है। गोबर, गोमूत्र, गुड़ और दलहनी आटे से बनी जैविक खाद का उपयोग मिट्टी की उर्वरता बढ़ाता है और रासायनिक उर्वरकों की निर्भरता कम करता है।

चुनौतियां और समाधान

जागरूकता की कमी:

अभी भी बहुत से किसान सहकारी खेती के फायदों से अवगत नहीं हैं। इसके लिए व्यापक प्रचार-प्रसार और शिक्षा कार्यक्रमों की आवश्यकता है। कृषि विश्वविद्यालयों और KVK केंद्रों को इस दिशा में अधिक सक्रिय भूमिका निभानी होगी।

प्रारंभिक निवेश:

सहकारी खेती शुरू करने के लिए प्रारंभिक निवेश की आवश्यकता होती है। सरकार को सब्सिडी और आसान ऋण की व्यवस्था करनी चाहिए। उत्तराखंड की **माधो सिंह भंडारी** सहकारी सामूहिक कृषि योजना इस दिशा में एक सकारात्मक कदम है।

प्रबंधन की समस्या:

सामूहिक खेती में निर्णय लेने और प्रबंधन की चुनौतियां होती हैं। इसके लिए किसानों को प्रशिक्षण देना और पेशेवर प्रबंधन की व्यवस्था करना आवश्यक है।

सरकारी पहल और भविष्य की संभावनाएं

केंद्र सरकार ने 10,000 नए FPO बनाने का लक्ष्य रखा है। सहकार से समृद्धि के नारे के साथ सहकारिता मंत्रालय की स्थापना की गई है जो सहकारी आंदोलन को मजबूत बनाने पर काम कर रहा है। राज्य सरकारों को भी स्थानीय स्तर पर सहकारी खेती को बढ़ावा देने के लिए नीतियां बनानी चाहिए।

कृषि यंत्रीकरण ऐप का विकास करके किराए पर कृषि मशीनों की उपलब्धता सुनिश्चित की जा सकती है। बैंकों में किसान क्रेडिट कार्ड की तरह सामूहिक खेती के लिए आसान ऋण प्रक्रिया विकसit करनी चाहिए।

निष्कर्ष

सहकारी खेती छोटे किसानों के लिए एक व्यावहारिक और प्रभावशाली समाधान है जो उन्हें आर्थिक सुरक्षा, तकनीकी उन्नति और बेहतर जीवन स्तर प्रदान कर सकती है। अमूल, IFFCO और अन्य सफल सहकारी संस्थानों का अनुभव यह दिखाता है कि सामूहिक प्रयासों से कृषि क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव संभव है।

आज जब भारत आत्मनिर्भर भारत के सपने को साकार करने पर काम कर रहा है, तो सहकारी खेती इस दिशा में एक मजबूत आधार प्रदान कर सकती है। इसके लिए सरकार, किसान संगठनों और नागरिक समाज को मिलकर काम करना होगा। केवल तभी हम अपने छोटे किसानों को मजबूत बना सकेंगे और देश की खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित कर सकेंगे। सहकारी खेती सिर्फ एक कृषि पद्धति नहीं है, बल्कि यह **"सहकार से समृद्धि"** का जीवंत उदाहरण है जो छोटे किसानों के लिए उम्मीद की किरण बनकर उभर रही है।

****

मूल ग्रंथि सूत्रकृमि (रूट-नॉट नेमाटोड) के प्रबंधन में पौध-वृद्धि संवर्धक मूल- जीवाणुओं (पी.जी.पी.आर.) का महत्व और उपयोगिता

अभय[1], सुनीता देवी एवं सुभाष चंद

सूक्ष्मजीव विज्ञान प्रयोगशाला, मूल विज्ञान विभाग

डॉ. यशवंत सिंह परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय नौणी, सोलन (हि.प्र.)।

रूट नॉट नेमाटोड एक खतरनाक सूक्ष्म मिट्टी-जनित परजीवी है जो सैकड़ों प्रकार की फसलों की जड़ों को नुकसान पहुँचाता है। इसका वैज्ञानिक नाम *Meloidogyne* spp. है। हिंदी में इसे अक्सर **"मूल ग्रंथि सूत्रकृमि"** या सीधे "जड़ गाँठ सूत्रकृमि" कहा जाता है। खेती के लिए एक गंभीर खतरा बन चुका यह सूक्ष्म मिट्टी-जनित परजीवी जड़ों में गाँठें बना देता है, जिससे पौधों का पोषण अवरुद्ध हो जाता है और विकास रुक जाता है। परिणामस्वरूप फसल की पैदावार में भारी गिरावट आती है। अब तक इस समस्या से निपटने के लिए रासायनिक नेमाटोसाइड्स का ही सहारा लिया जाता था, लेकिन इन रसायनों ने मिट्टी की उर्वरता को नुकसान पहुँचाया है, पर्यावरण प्रदूषण बढ़ाया है और मानव स्वास्थ्य के लिए जोखिम पैदा किया है। इन चुनौतियों के मद्देनजर, अब कृषि क्षेत्र में इसके टिकाऊ और पर्यावरण-अनुकूल विकल्पों की तत्काल आवश्यकता महसूस की जा रही है। इस संदर्भ में, जड़ गाँठ सूत्रकृमि के प्रबंधन में जैव-कीटनाशकों, विशेष रूप से पौध-वृद्धि संवर्धक मूल-जीवाणु (पी.जी.पी.आर.) का प्रयोग एक पर्यावरण-अनुकूल और टिकाऊ दृष्टिकोण के रूप में उभर कर सामने आया है। ये लाभकारी जीवाणु न केवल पौधों की वृद्धि को बढ़ाते हैं बल्कि इस सूक्ष्म मिट्टी-जनित परजीवी जैसे अन्य हानिकारक सूक्ष्मजीवों को भी नियंत्रित करते हैं।

मुख्य लक्षण (Main Symptoms):

1. जड़ों पर गाँठें (Root Galls):

इसका सबसे स्पष्ट लक्षण पौधों की जड़ों पर छोटी-बड़ी गाँठों (फुलाव) का बनना है। ये गाँठें छोटे दानों जैसी से लेकर बड़ी गांठों जैसी हो सकती हैं। ये गाँठें वास्तव में पौधे की जड़ों में कीड़े के कारण बनी असामान्य वृद्धि (Abnormal Growth) होती हैं।

ISSN: 3049-2211

मूलगांठ सूत्रकृमि संक्रमण के लक्षण:

गांठों का निर्माण
(टमाटर)

पत्तियों में ऊतक मृतता
(सोयाबीन)

पत्तियों का पीला पड़ना
(टमाटर)

पौधे की वृद्धि में रुकावट
(जंगली तम्बाकू)

2. पौधे का मुरझाना (Wilting of Plant):

जड़ें खराब होने के कारण पौधा पानी और पोषक तत्व ठीक से नहीं ले पाता। इससे पौधा दिन में मुरझाया रहता है, भले ही मिट्टी में पर्याप्त नमी हो।

3. अवरुद्ध विकास (Stunted Growth):

पौधे का विकास रुक जाता है। पौधा छोटा रह जाता है और पत्तियाँ पीली पड़ सकती हैं (क्लोरोसिस)।

4. पत्तियों का पीला पड़ना (Yellowing of Leaves):

पोषक तत्वों के अवशोषण न हो पाने के कारण पत्तियाँ पीली दिखने लगती हैं, जो अक्सर नाइट्रोजन की कमी जैसा प्रतीत होता है।

5. उपज में कमी (Reduced Yield):

पौधा कमजोर होने के कारण फल कम लगते हैं, और उपज में भारी कमी आ जाती है।

रूट नॉट नेमाटोड का प्राकृतिक समाधान: पौध-वृद्धि संवर्धक मूल- जीवाणु (पी.जी.पी.आर.)

पौध-वृद्धि संवर्धक मूल- जीवाणु क्या हैं?

पी.जी.पी.आर. यानि 'प्लांट ग्रोथ प्रमोटिंग राइजोबैक्टीरिया' एक विशेष प्रकार के लाभकारी बैक्टीरिया हैं जो पौधों की जड़ों के आस-पास की मिट्टी (राइजोस्फीयर) में रहते हैं। ये बैक्टीरिया पौधों के साथ एक सहजीवी संबंध बनाते हैं, जहाँ ये पौधों की वृद्धि में मदद करते हैं और उन्हें रोगों से बचाते हैं। इनमें *Bacillus*, *Pseudomonas*, *Azotobacter*, *Burkholderia* और *Serratia* जैसी कई उपयोगी प्रजातियाँ शामिल हैं। यह एक प्रकार का जैविक संरक्षण (Bio-control) है।

पी.जी.पी.आर. का कार्य करने का तरीका:

पी.जी.पी.आर. नेमाटोड के खिलाफ एक बहु-स्तरीय हमला करता है, जो इस प्रकार है:

1. प्रत्यक्ष नेमाटोडनाशी क्रिया (Direct Nematicidal Action)

कुछ पी.जी.पी.आर. प्रजातियाँ ऐसे जैव सक्रिय यौगिक (metabolites) बनाती हैं जो नेमाटोड के अंडों और लार्वा को नष्ट कर देते हैं। उदाहरण के लिए, *Bacillus subtilis* और *Pseudomonas fluorescens* द्वारा उत्पादित एंजाइम जैसे काइटिनेज, प्रोटीज और लिपेज नेमाटोड के बाहरी आवरण को तोड़ते हैं।

2.प्रेरित प्रतिरोध (Induced Systemic Resistance–ISR)

पी.जी.पी.आर. पौधों में आंतरिक रक्षा प्रणाली को सक्रिय कर देते हैं जिससे पौधे नेमाटोड के हमले के प्रति अधिक सहनशील हो जाते हैं। प्रेरित प्रतिरोध वह प्रक्रिया है जिसमें किसी विशेष उत्तेजना के प्रभाव से पौधे की स्वयं को विभिन्न प्रकार के कीटों से बचाने की क्षमता बढ़ जाती है। यह तंत्र पौधे में जैव-रासायनिक रक्षा यौगिकों जैसे फेनोल, पेरऑक्सिडेज़ और PAL एंजाइम की सक्रियता को बढ़ाता है।

3. पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाना (Enhanced Nutrient Uptake)

ये जीवाणु फॉस्फोरस का घुलनशीलकरण करते हैं, नाइट्रोजन स्थिरीकरण करते हैं और हार्मोन जैसे ऑक्सिन, साइटोकिनिन और जिबरेलिन का उत्पादन करते हैं, जिससे पौधों की जड़ें अधिक मजबूत होती हैं और नेमाटोड संक्रमण का असर कम होता है।

ISSN: 3049-2211

4. प्रतिस्पर्धा और उपनिवेशन (Competition and Colonization)

पी.जी.पी.आर. पौधों की जड़ों की सतह पर मजबूत उपनिवेशन करके नेमाटोड के प्रवेश को रोकते हैं। इस प्रक्रिया को स्पेस और पोषक प्रतिस्पर्धा (niche competition) कहा जाता है।

5. पादप हार्मोन (फाइटोहॉर्मोन) का उत्पादन (Phytohormone Production)

विभिन्न प्रकार के पी.जी.पी.आर. स्ट्रेनों द्वारा कई ऐसे जैविक यौगिकों का निर्माण किया जाता है जो पौधों की वृद्धि को प्रोत्साहित करते हैं। इनमें पादप हार्मोन और वृद्धि नियामक दोनों शामिल होते हैं, जैसे- ऑक्सिन, साइटोकिनिन, एब्सिसिक अम्ल, जिबरेलिक अम्ल, एथिलीन, ब्रैसिनोस्टेरॉयड्स, पॉलीअमाइन्स, जैस्मोनेट्स, स्ट्राइगोलैक्टोन्स, सैलिसिलिक अम्ल तथा अन्य जैव सक्रिय यौगिक। सूक्ष्मजीवों द्वारा उत्पादित ये फाइटोहॉर्मोन मुख्यतः पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देते हैं, क्योंकि ये कोशिका विभाजन, लम्बाई में वृद्धि और ऊतक प्रसार जैसी महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं को सक्रिय करते हैं। इन क्रियाओं के परिणामस्वरूप पौधे अधिक स्वस्थ, सशक्त और सजीव रूप से विकसित होते हैं।

पी.जी.पी.आर. के अतिरिक्त लाभ (Additional Benefits of PGPR)

1. **पौधों की बेहतर वृद्धि:** यह पौधों को आवश्यक पोषक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस उपलब्ध कराने में मदद करता है।
2. **मिट्टी की सेहत में सुधार:** यह मिट्टी की संरचना को बेहतर बनाता है और लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ाता है।
3. **तनाव प्रबंधन:** सूखा या लवणीय मिट्टी जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी पौधों को सहनशील बनाता है।

कैसे करें पी.जी.पी.आर. का उपयोग?

पी.जी.पी.आर. आमतौर पर बाजार में पाउडर या तरल रूप में उपलब्ध होता है। इसका उपयोग निम्न तरीकों से किया जा सकता है:

1. **बीज उपचार (Seed Treatment):** बोने से पहले बीजों को पी.जी.पी.आर. के घोल में डुबोया जाता है।
2. **जड़ डुबोना (Root Dipping):** रोपाई से पहले पौध की जड़ों को इस घोल में डुबोया जाता है।
3. **मिट्टी में Application:** खेत की तैयारी के समय पी.जी.पी.आर. को मिट्टी में मिलाया जा सकता है या सिंचाई के पानी के साथ दिया जा सकता है।

क्यों आवश्यक है इनका उपयोग बढ़ाना?

आज जब खेती में मृदा स्वास्थ्य बिगड़ रहा है और उत्पादन लागत बढ़ती जा रही है, तब ऐसे सूक्ष्मजीवों का प्रयोग किसानों को कम लागत में अधिक उत्पादन देने में मदद कर सकता है। इनका उपयोग मिट्टी की संरचना सुधारता है, जैविक पदार्थ की मात्रा बढ़ाता है और पौधों को स्वाभाविक रूप से स्वस्थ बनाए रखता है।

कृषि वैज्ञानिकों का मानना है कि इन लाभकारी जीवाणुओं का उपयोग सिर्फ एक कीटनाशक के रूप में नहीं, बल्कि मिट्टी के दीर्घकालिक पुनर्जीवन (Soil Revitalization) के रूप में देखा जाना चाहिए।

निष्कर्ष

रूट नॉट नेमाटोड जैसी गंभीर समस्या से निपटने के लिए पी.जी.पी.आर. एक क्रांतिकारी, सुरक्षित और टिकाऊ जैविक तकनीक है। यह न केवल नेमाटोड को नियंत्रित करती है बल्कि पौधों की समग्र वृद्धि को भी बढ़ावा देकर अंततः किसानों की आय में वृद्धि करती है। रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता कम करने और टिकाऊ कृषि की दिशा में बढ़ने के लिए पी.जी.पी.आर. एक शक्तिशाली हथियार साबित हो रहा है। भविष्य की कृषि की सफलता इसी प्रकार की प्रकृति-अनुकूल तकनीकों में निहित है।

****

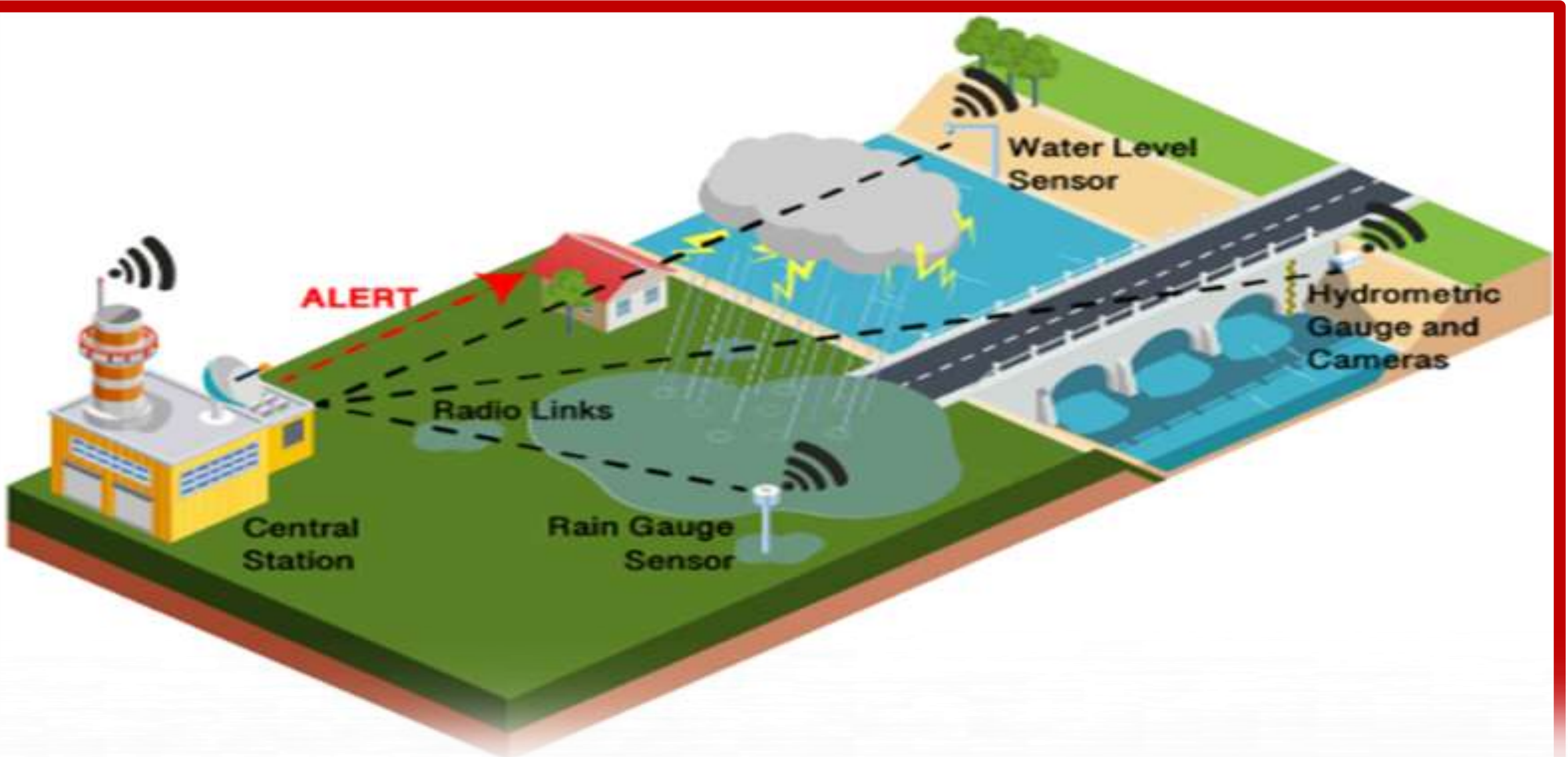

सूखे और बाढ़ प्रबंधन हेतु सैटेलाइट आधारित प्रारंभिक चेतावनी प्रणाली

आयुष कुमार[1], ज्ञानेन्द्र सिंह एवं रोशनी चौरसिया
शोध छात्र
बांदा कृषि एवं प्रोद्योगिकी विश्वविद्यालय, बांदा

परिचय

सूखा और बाढ़ ग्रामीण कृषि को गंभीर रूप से प्रभावित करती है, खाद्य सुरक्षा और किसान की आजीविका को प्रभावित करता है। सूखा फसल की उपज को कम करता हैं, जल संसाधनों को कम करतो हैं, और पशुधन को कमजोर करता हैं, जबकि बाढ़ फसलों को नष्ट करती है, मिट्टी को नष्ट करती है, और बुनियादी ढांचे को नुकसान पहुंचाती है। ये आपदाएँ ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि उत्पादकता और अर्थशास्त्र की स्थिरता को बाधित करती हैं। उनके प्रभाव को संबोधित करने के लिए प्रभावी प्रबंधन रणनीतियों की आवश्यकता होती है, जिसमें उपग्रह-आधारित निगरानी, प्रारंभिक चेतावनी प्रणाली, और ग्रामीण समुदायों की रक्षा के लिए स्थायी कृषि प्रथाओं और जलवायु-प्रेरित चुनौतियों के खिलाफ लचीलापन बढ़ाने के लिए स्थायी कृषि प्रथाओं को शामिल किया जाता है।

सूखा

सूखा पानी या नमी की उपलब्धता में एक विशिष्ट अवधि के लिए सामान्य स्तर से काफी नीचे एक अस्थायी कमी है। यह एक जलवायु विसंगति है जो उप-सामान्य वर्षा, अनियमित वितरण, उच्च पानी की मांग या इन कारकों के संयोजन के कारण होती है। सूखा चरम हाइड्रोलॉजिकल घटनाएं हैं जिनके परिणामस्वरूप तीव्र पानी की कमी होती है, जो लंबे समय तक बड़े क्षेत्रों में मनुष्यों, वनस्पति, जानवरों और पारिस्थितिक तंत्रों पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। मौसम वैज्ञानिक सूखे को वर्षा की अनुपस्थिति के रूप में परिभाषित करते हैं, जबकि कृषि

वैज्ञानिक इसे विकास और उत्पादकता को बनाए रखने के लिए फसल जड़ क्षेत्र में अपर्याप्त मिट्टी की नमी के रूप में देखते हैं।

सूखे को मोटे तौर पर इसके मानदंडों और प्रभावों के आधार पर मौसम संबंधी, हाइड्रोलॉजिकल, कृषि और सामाजिक आर्थिक प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता है। वर्षा क्षेत्र, विशेष रूप से शुष्क क्षेत्र, सूखे के लिए अधिक असुरक्षित हैं। हाल के दशकों में, मानसून पैटर्न तेजी से अप्रत्याशित हो गया है, जिससे पहले से अप्रभावित क्षेत्र हल्के से गंभीर सूखे की स्थिति का अनुभव होता है। फसलों और वनस्पतियों के लिए, सूखा नमी के तनाव को प्रेरित करता है जब वाष्पीकरण मिट्टी की नमी की उपलब्धता से अधिक होता है। भारत में, कृषि सूखा तब होता है जब वार्षिक वर्षा सामान्य दक्षिण पश्चिम मानसून की बारिश के 50-75 प्रतिशत से नीचे आती है। विलंबित मानसून की शुरुआत, जल्दी वापसी, या भारी बारिश के बीच लंबे समय तक सूखे मंत्र भारतीय कृषि के सामान्य ट्रिगर हैं। भारत में वे काफी प्रभावित करते हैं।

फसल की पैदावार

महत्वपूर्ण फसल वृद्धि के चरणों के दौरान अपर्याप्त पानी खाद्य सुरक्षा के लिए खतरनाक है जो कृषि उत्पादकता को कम करता है और किसानों के लिए आर्थिक नुकसान का कारण बनता है।

आजीविका

लगातार सूखे से किसानों की आय कम हो जाती है, उन्हें ऋण में धकेल देता है और ग्रामीण परिवारों को जीवित रहने के लिए पलायन करने के लिए मजबूर कर देता है।

पशुधन

सूखे के दौरान चारे और पानी की कमी के कारण पशु कमजोर हो जाते हैं, उनकी उत्पादकता कम हो जाती हैं।

जल संसाधन

सूखे की कमी के दौरान भूजल पर अधिक निर्भरता, लंबी अवधि के पानी की कमी और अस्थिर कृषि प्रथाओं का निर्माण करती है। बाढ़, अक्सर अत्यधिक वर्षा या नदियों को उखाड़ने के कारण होता है, तत्काल और दीर्घकालिक चुनौतियों का सामना करता है।

फसल विनास

बाढ़ का पानी खड़ी फसलों को डुबो देता है, जिससे कृषि को पूर्ण नुकसान होता है और ग्रामीण कृषि समुदाय तबाह हो जाता है।

मृदा क्षरण

पोषक तत्वों से भरपूर ऊपरी मिट्टी बाढ़ के कारण नष्ट हो जाती है, जिससे उर्वरा शक्ति कम हो जाती है और भविष्य में खेती के लिए भूमि कम उपजाऊ हो जाती है।

बुनियादी ढांचे को नुकसान

बाढ़ से सिंचाई प्रणाली, भंडारण सुविधाएं और सड़कों सहित आवश्यक ग्रामीण बुनियादी ढांचे को नुकसान पहुंचता है, जिससे कृषि आपूर्ति श्रृंखला बाधित होती है।

स्वास्थ्य संबंधी खतरा

स्थिर बाढ़ का पानी बीमारियों एवं हानिकारक जिवाणु व विषाणु के लिए प्रजनन स्थल बनाता है, जिससे ग्रामीण आबादी के स्वास्थ्य को खतरा होता है तथा गम्भीर बिमारी होने का भय रहता है।

प्रारंभिक चेतावनी प्रणालियों में उपग्रह इमेजरी की भूमिका

उन्नत सेंसर वाले उपग्रह उपकरण पृथ्वी के विभिन्न मापदंडों पर डेटा कैप्चर करते हैं। भौगोलिक सूचना प्रणाली का उपयोग करके संसाधित और विश्लेषण किया गया यह डेटा अमूल्य अंतर्दृष्टि प्रदान करता है:

वर्षा पैटर्न

उपग्रह इमेजरी वर्षा के स्तर और स्थानिक वितरण की निगरानी करती है, जो मौसम पूर्वानुमान, बाढ़ जोखिम प्रबंधन और संवेदनशील ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि योजना के लिए सटीक डेटा प्रदान करती है।

मिट्टी की नमी

उपग्रह मिट्टी में पानी की मात्रा का अनुमान लगाते हैं, जिससे किसान प्रभावी ढंग से सिंचाई कार्यक्रम की योजना बना सकते हैं, पानी की बर्बादी को कम कर सकते हैं और टिकाऊ कृषि के लिए सूखे की स्थिति के अनुकूल हो सकते हैं।

नदी का स्तर

उपग्रह अल्टीमेट्री नदी के प्रवाह को ट्रैक करती है और बढ़ते जल स्तर की निगरानी करती है, जिससे बाढ़ के जोखिम का आकलन करने और बाढ़-ग्रस्त क्षेत्रों में आपदा की तैयारी में सहायता मिलती है।

वनस्पति स्वास्थ्य

रिमोट सेंसिंग वनस्पति की स्थिति का विश्लेषण करती है, फसल तनाव का आकलन करने, सूखा प्रभावित क्षेत्रों का पता लगाने

और समय पर हस्तक्षेप करने के लिए NDVI जैसे सूचकांकों का उपयोग करती है।

प्रमुख उपग्रह और कार्यक्रम

भारतीय उपग्रह

इसरो द्वारा विकसित INSAT, RISAT और Cartosat, कृषि और आपदा प्रबंधन प्रयासों का समर्थन करने के लिए मौसम के पैटर्न, मिट्टी की स्थिति और आपदा-ग्रस्त क्षेत्रों की निगरानी के लिए महत्वपूर्ण डेटा प्रदान करते हैं।

वैश्विक पहल

Sentinel (ESA) और Landsat (NASA) जैसे कार्यक्रम भारतीय उपग्रह डेटा के पूरक हैं, जो ग्रामीण विकास में अधिक व्यापक अनुप्रयोगों के लिए वैश्विक दृष्टिकोण और उन्नत इमेजरी प्रदान करते हैं।

सहयोगी प्रयास

FAO और WMO जैसे संगठनों के साथ साझेदारी वैश्विक स्तर पर उपग्रह डेटा को एकीकृत करती है, जिससे कुशल विश्लेषण, बेहतर आपदा प्रतिक्रिया और उन्नत कृषि नियोजन रणनीतियाँ सुनिश्चित होती हैं।

उपग्रह प्रौद्योगिकी के माध्यम से सूखा प्रबंधन

निगरानी एवं मूल्यांकन

वर्षा संबंधी विसंगतियाँ

उपग्रह वर्षा के स्तर में विचलन की पहचान करता है, वर्षा वितरण और तीव्रता पैटर्न की निगरानी करके सूखे के जोखिमों की भविष्यवाणी और समाधान करने में मदद करता है।

मिट्टी की नमी का मानचित्रण

MSAP जैसे उपकरण सटीक, वास्तविक समय में मिट्टी की नमी का डेटा प्रदान करते हैं, जिससे सूखे के दौरान बेहतर जल प्रबंधन और सूचित कृषि निर्णय लेने में मदद मिलती है।

वनस्पति सूचकांक

NDVI और EVI फसल स्वास्थ्य और तनाव का समाधान करते हैं, पानी की कमी के प्रभाव के बारे में जानकारी देते हैं, और अनुकूली कृषि पद्धतियों का मार्गदर्शन करते हैं।

पूर्व चेतावनी प्रणालियाँ

मौसमी पूर्वानुमान

दीर्घकालिक जलवायु रुझानों के आधार पर सूखे के जोखिमों की भविष्यवाणी करने से किसानों और नीति निर्माताओं को संभावित जल की कमी के लिए तैयारी करने में मदद मिलती है।

गतिशील निगरानी

नियमित उपग्रह अपडेट समय पर हस्तक्षेप करने की अनुमति देते हैं, जैसे कि पूरक सिंचाई और रोपण कार्यक्रम को बदलना, ताकि फसल के नुकसान को कम किया जा सके।

सामुदायिक अलर्ट

मोबाइल ऐप, एसएमएस और स्थानीय मीडिया के माध्यम से साझा की गई चेतावनियाँ ग्रामीण समुदायों को सूखे की तैयारी के उपायों को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए सशक्त बनाती हैं।

न्यूनीकरण रणनीतियाँ

जल संसाधन प्रबंधन

सैटेलाइट-निर्देशित संसाधन मानचित्रण पानी के उपयोग को प्राथमिकता देता है, सूखे के दौरान स्थिरता सुनिश्चित करने और दीर्घकालिक कृषि लचीलापन बढ़ाने के लिए कुशल सिंचाई, वर्षा जल संचयन और भूजल पुनःपूर्ति को बढ़ावा देता है।

फसल विविधीकरण

सूखा-प्रतिरोधी और कम अवधि की फसलों को प्रोत्साहित करने से जलवायु की चरम स्थितियों के प्रति संवेदनशीलता कम हो जाती है, जिससे पानी की कमी से प्रभावित ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों के लिए स्थिर आय और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित होती है।

सरकारी योजनाएँ

PMKSY और MGNREGA जैसी पहलों में उपग्रह-आधारित अंतर्दृष्टि को एकीकृत करने से जल संरक्षण, बुनियादी ढाँचा विकास और टिकाऊ कृषि प्रथाओं में सुधार होता है, जिससे ग्रामीण आजीविका पर सूखे के प्रभाव को कम किया जा सकता है।

सैटेलाइट प्रौद्योगिकी के माध्यम से बाढ़ प्रबंधन

बाढ़ जोखिम मूल्यांकन

वर्षा की सघनता:

उपग्रह भारी वर्षा के पैटर्न की निगरानी करते हैं, जिससे अधिकारियों को संभावित बाढ़ की आशंका होती है और समय पर आपदा शमन रणनीतियां शुरू करने में मदद मिलती है।

नदी की निगरानी

सैटेलाइट अल्टीमेट्री नदी के जल स्तर को ट्रैक करती है, बाढ़ की संभावना वाले क्षेत्रों के लिए प्रारंभिक चेतावनी प्रदान करती है और जोखिम प्रबंधन का मार्गदर्शन करती है।

ISSN: 3049-2211

बाढ़ के मैदान का मानचित्रण

उपग्रह इमेजरी के माध्यम से उच्च जोखिम वाले बाढ़-प्रवण क्षेत्रों की पहचान करने से लक्षित संसाधन आवंटन और निवारक उपायों की अनुमति मिलती है।

पूर्व चेतावनी प्रणालियाँ

वास्तविक समय अलर्ट

उपग्रह प्रणालियाँ समय पर बाढ़ की भविष्यवाणी और अलर्ट प्रदान करती हैं, जिससे संवेदनशील क्षेत्रों में जीवन, संपत्ति और कृषि के जोखिम कम हो जाते हैं।

हाइड्रोलॉजिकल मॉडल

उपग्रह डेटा को स्थानीय जमीनी अवलोकन के साथ एकीकृत करने से बाढ़ के पूर्वानुमानों में सटीकता बढ़ती है और प्रतिक्रिया रणनीतियों में सुधार होता है।

सामुदायिक तैयारी

बाढ़ की चेतावनियों की व्याख्या करने और निकासी योजनाओं को लागू करने में ग्रामीण समुदायों को प्रशिक्षित करने से आपदा से संबंधित हताहतों और नुकसान को कम किया जा सकता है।

न्यूनीकरण रणनीतियाँ

संरचनात्मक उपाय

सैटेलाइट इमेजरी बाढ़ को प्रभावी ढंग से नियंत्रित करने के लिए तटबंधों, जलाशयों और जल निकासी प्रणालियों के डिजाइन और निर्माण में सहायता करती है।

गैर-संरचनात्मक उपाय

वनीकरण, भूमि उपयोग योजना और सामुदायिक भागीदारी को बढ़ावा देना पर्यावरणीय क्षरण को कम करके बाढ़ के प्रभाव को कम करता है।

राहत और रिकवरी

सैटेलाइट-निर्देशित मैपिंग बचाव कार्यों, संसाधन वितरण और बाढ़ के बाद कुशल पुनर्वास में सहायता करती है, जिससे ग्रामीण समुदायों के लिए रिकवरी का समय कम हो जाता है।

चुनौतियाँ एवं सीमाएँ

डेटा सुगम्यता- स्थानीय प्राधिकारियों और किसानों के लिए उपग्रह डेटा तक समय पर और किफायती पहुंच सुनिश्चित करना।

बुनियादी ढांचे की कमियां- ग्रामीण क्षेत्रों में ग्राउंड स्टेशन और संचार नेटवर्क का निर्माण।

जागरूकता और प्रशिक्षण- हितधारकों को उपग्रह-आधारित अंतर्दृष्टि का प्रभावी ढंग से उपयोग करने के बारे में शिक्षित करना।

नीति एकीकरण- राष्ट्रीय और राज्य स्तरीय आपदा प्रबंधन योजनाओं के साथ उपग्रह अनुप्रयोगों को संरेखित करना।

भविष्य की दिशाएँ

प्रौद्योगिकीय प्रगति- उपग्रह डेटा विश्लेषण को बढ़ाने के लिए एआई, एमएल और आईओटी का उपयोग करना।

सहयोगात्मक प्लेटफॉर्म- सरकारी एजेंसियों, निजी क्षेत्रों और अनुसंधान संस्थानों के बीच साझेदारी को बढ़ावा देना।

समुदाय-केंद्रित दृष्टिकोण- ग्रामीण आबादी की आवश्यकताओं के अनुरूप स्थानीयकृत समाधान विकसित करना।

नीति समर्थन- उपग्रह आधारित आपदा प्रबंधन के लिए वित्त पोषण और नियामक ढांचे को मजबूत करना।

निष्कर्ष

सूखे और बाढ़ से ग्रामीण कृषि पर बहुत बुरा असर पड़ता है, जिससे आजीविका, खाद्य सुरक्षा और समग्र ग्रामीण विकास को खतरा होता है। उपग्रह प्रौद्योगिकी का उपयोग निगरानी, प्रारंभिक चेतावनी और जोखिम न्यूनीकरण के लिए सटीक डेटा प्रदान करके परिवर्तनकारी समाधान प्रदान करता है। भारतीय और वैश्विक उपग्रह कार्यक्रम, सहयोगी प्रयासों के साथ मिलकर आपदा की तैयारी और टिकाऊ कृषि पद्धतियों को बढ़ाते हैं। डेटा की सुलभता और बुनियादी ढांचे के अंतराल जैसी चुनौतियों के बावजूद, एआई, एमएल और आईओटी जैसी उन्नत तकनीकों का एकीकरण कृषि लचीलेपन में क्रांतिकारी बदलाव लाने का वादा करता है। समुदाय-केंद्रित दृष्टिकोणों को सुविधाजनक बनाने और उपग्रह-आधारित अंतर्दृष्टि के साथ नीतियों को संरेखित करके, भारत प्राकृतिक आपदाओं के प्रभावों को प्रभावी ढंग से कम कर सकता है और अपनी ग्रामीण आबादी के लिए टिकाऊ विकास सुनिश्चित कर सकता है।

******

टमाटर फल छेदक (*Helicoverpa armigera*) का एकीकृत कीट प्रबंधन

वैशाली दत्तूजी पिदुरकर[1], कमलेश जाखड़, विकास यादव

कृषि कीट विज्ञान

राजा बलवंत सिंह कॉलेज बिचपुरी, आगरा, उत्तर प्रदेश

भूमिका

टमाटर (*Solanum lycopersicum* L.) भारत की प्रमुख सब्जी फसलों में से एक है। इसका उपयोग सब्जी, सॉस, केचप, चटनी, जूस और प्रोसेसिंग उद्योगों में बड़े पैमाने पर किया जाता है। भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा टमाटर उत्पादक देश है।

लेकिन टमाटर उत्पादन को कई कीट प्रभावित करते हैं, जिनमें सबसे विनाशकारी कीट है — टमाटर का फल छेदक (*Helicoverpa armigera*) यह कीट मिर्च, बैंगन, कपास, अरहर, चना और मक्का जैसी अन्य फसलों पर भी हमला करता है, परंतु टमाटर में यह सबसे अधिक आर्थिक हानि पहुँचाता है।

कीट का वैज्ञानिक वर्गीकरण

संघ (Phylum) : Arthropoda

वर्ग (Class) : Insecta

गण (Order) : Lepidoptera

कुल (Family) : Noctuidae

वंश (Genus) : *Helicoverpa*

जाति (Species) : *Helicoverpa armigera* (Hübner)

यह कीट विश्वभर में पाया जाता है तथा उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में सबसे गंभीर कीटों में से एक माना जाता है।

कीट की पहचान

(क) अंडा (Egg): मादा पतंगा कोमल कलियों, फूलों या छोटे फलों पर गोलाकार, हल्के सफेद अंडे देती है जो बाद में हल्के भूरे या नीले रंग के हो जाते हैं। एक मादा लगभग 800–1000 अंडे देती है।

(ख) सुंडी (Larva): यह अवस्था सबसे हानिकारक होती है। नवजात सुंडी हल्की पीली या हरी होती है और पूर्ण विकसित होने पर गहरे हरे या भूरे रंग की हो जाती है। शरीर पर काले पट्टे और बाल होते हैं। लंबाई लगभग 3–4 सेमी।

ISSN: 3049-2211

(ग) प्यूपा (Pupa): सुंडी मिट्टी में 4–5 सेमी गहराई में जाकर प्यूपा बनाती है, जो गेरुए भूरे रंग का होता है और निष्क्रिय अवस्था होती है।

(घ) वयस्क पतंगा (Adult Moth): मध्यम आकार का पतंगा; अग्र पंख हल्के भूरे जिन पर गहरे धब्बे रहते हैं और पिछले पंख सफेद होते हैं जिनके किनारों पर गहरी धारियाँ होती हैं।

जीवन चक्र

अंडा अवस्था: 3–5 दिन

सुंडी अवस्था: 15–20 दिन (सबसे अधिक नुकसान करती है)

प्यूपा अवस्था: 7–10 दिन

वयस्क अवस्था: 7–10 दिन

अनुकूल परिस्थितियों (25–30°C, मध्यम आर्द्रता) में यह कीट एक मौसम में 4–6 पीढ़ियाँ पूरी कर सकता है।

टमाटर में क्षति

(क) प्रारंभिक अवस्था: सुंडियाँ कलियाँ और फूल खाती हैं जिससे वृद्धि रुक जाती है।

(ख) फल अवस्था: सुंडी फलों में छेद कर बीज और गूदा खा जाती है। छेद पर मल दिखाई देता है और फल सड़ जाते हैं। एक सुंडी 5–8 फल नष्ट कर सकती है।

(ग) भंडारण प्रभाव: संक्रमित फल की गुणवत्ता और बाजार मूल्य घटता है, जिससे 30–80% तक उपज में हानि हो सकती है।

कीट प्रकोप बढ़ाने वाले कारक

गर्म व शुष्क मौसम, एक ही फसल का बार-बार लेना, अत्यधिक नत्रजन उर्वरक, खरपतवारों की उपस्थिति, तथा देर से बुवाई।

प्रकोप के लक्षण

फलों में गोल छेद जिनमें मल भरा हो, फूलों का झड़ना, पत्तियाँ विकृत होना, पौधे की ऊपरी शाखाओं पर सुंडियाँ दिखना और बाजार योग्य फलों में भारी कमी।

निगरानी और पहचान

फेरोमोन ट्रैप प्रति हेक्टेयर 5 लगाएँ (Helilure/Helitrap)। यदि 5–10% फल प्रभावित हों तो नियंत्रण करें। साप्ताहिक निरीक्षण करें, विशेषकर फूल बनने के समय।

एकीकृत कीट प्रबंधन (IPM)

(क) संस्कृतिक उपाय: फसल चक्र अपनाएँ, समय पर बुवाई करें, संतुलित उर्वरक प्रयोग करें, खरपतवार नियंत्रण करें और संक्रमित फलों को नष्ट करें।

(ख) यांत्रिक उपाय: हाथ से अंडे व सुंडियाँ हटाएँ, फेरोमोन व लाइट ट्रैप लगाएँ।

(ग) जैविक नियंत्रण: Trichogramma chilonis (50,000 परजीवी/हेक्टेयर), Chrysoperla carnea (50,000 लार्वा/हेक्टेयर), Bacillus thuringiensis, नीम आधारित उत्पाद या HNPV छिड़कें।

(घ) रासायनिक नियंत्रण: स्पिनोसेड 45% SC (0.5 मिली/ली.), इंडोक्साकार्ब 15.8% EC (1 मिली/ली.), इमामेक्टिन बेन्जोएट 5% SG (0.4 ग्राम/ली.), लैम्ब्डा सायहलोथ्रिन 5% EC (1 मिली/ली.)।

क्रमिक IPM कार्यक्रम

अंकुरण अवस्था: संतुलित खाद, निराई-गुड़ाई।

फूल अवस्था: फेरोमोन ट्रैप, जैविक स्प्रे

फल अवस्था: नीम तेल/HNPV स्प्रे।

अधिक प्रकोप: रासायनिक छिड़काव।

कटाई बाद: संक्रमित अवशेष जलाना या दफनाना।

नए अनुसंधान

HNPV जैविक वायरस का उपयोग, Bt टमाटर विकास, ICT आधारित निगरानी, ड्रोन स्प्रे तकनीक, प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण।

आर्थिक महत्व

यह कीट भारत में टमाटर उत्पादन हानि का 40–60% तक जिम्मेदार है। नियंत्रण न होने पर प्रति हेक्टेयर ₹30,000–₹50,000 तक आर्थिक नुकसान संभव है।

पर्यावरणीय प्रभाव

रासायनिक दवाओं से लाभकारी कीट, मधुमक्खी और मिट्टी के जीवों को हानि होती है। दवा अवशेष मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। इसलिए IPM को बढ़ावा देना चाहिए।

किसानों के लिए सुझाव

खेत की नियमित निगरानी करें, नीम तेल का प्रयोग करें, फसल अवशेष न रखें, मिश्रित खेती करें (जैसे टमाटर + गेंदा), और समूह में नियंत्रण करें।

निष्कर्ष

टमाटर फल छेदक भारत में टमाटर उत्पादन की बड़ी चुनौती है। केवल रासायनिक उपाय पर्याप्त नहीं। जैविक, सांस्कृतिक, यांत्रिक और रासायनिक उपायों के संतुलित उपयोग वाला एकीकृत कीट प्रबंधन ही सर्वश्रेष्ठ समाधान है। समय पर निगरानी, फेरोमोन ट्रैप, जैविक नियंत्रण और सीमित रासायनिक उपयोग से किसान अपनी उपज, गुणवत्ता और पर्यावरण - तीनों की रक्षा कर सकते हैं।

****

स्ट्रॉबेरी की खेती में मल्चिंग द्वारा खरपतवार प्रबंधन

बिपिन कुमार[1]- शोधछात्र
डॉ. रवि शंकर वर्मा- सहायक प्रोफेसर
सौरभ वर्मा, श्याम सुन्दर एवं विशाल कुमार- शोधछात्र
एस.ए.एस.टी., उद्यानिकी विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ

स्ट्रॉबेरी (Fragaria × ananassa Duch.) एक उच्च मूल्य वाली फसल है, जिसकी खेती विश्वभर में समशीतोष्ण एवं उप-उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में की जाती है। यह फसल आर्थिक रूप से लाभकारी होने के साथ-साथ खरपतवार प्रतिस्पर्धा के प्रति अत्यधिक संवेदनशील भी है। पौधों की पत्तियाँ भूमि के समीप होने और छोटे छत्र (canopy) के कारण सूर्य का प्रकाश सीधे मिट्टी पर पड़ता है, जिससे खरपतवारों का अंकुरण तीव्र होता है। ये खरपतवार पौधों से जल, पोषक तत्व, प्रकाश एवं स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा कर उपज, फल आकार और गुणवत्ता को गंभीर रूप से प्रभावित करते हैं। पारंपरिक हाथ से निराई-गुड़ाई श्रमसाध्य और महंगी है, जबकि रासायनिक खरपतवारनाशी पर्यावरण प्रदूषण एवं अवशेष समस्या उत्पन्न करते हैं। इन परिस्थितियों में, काली पॉलिथीन शीट से मल्चिंग एक प्रभावी, टिकाऊ और पर्यावरण-अनुकूल तकनीक के रूप में उभर कर आई है, जो न केवल खरपतवार नियंत्रण में सहायक है, बल्कि मिट्टी की नमी एवं तापमान को संतुलित रखकर पौधों की वृद्धि और उपज को भी बढ़ाती है।

मल्चिंग का सिद्धांत (Principle of Mulching):

मल्चिंग का अर्थ है मिट्टी की सतह को किसी आवरण (जैसे जैविक पदार्थ या प्लास्टिक फिल्म) से ढकना, ताकि मिट्टी की नमी, तापमान और जैविक क्रियाओं को नियंत्रित किया जा सके। काली पॉलिथीन मल्च (black polyethylene mulch) प्रकाश को पार नहीं होने देता, जिससे मिट्टी के नीचे खरपतवार बीजों को अंकुरण के लिए आवश्यक प्रकाश नहीं मिलता। परिणामस्वरूप, खरपतवारों का अंकुरण रुक जाता है या वे मर जाते हैं। इसके साथ ही, यह पॉलिथीन मिट्टी से पानी के वाष्पीकरण को भी रोकता है, जिससे मिट्टी की नमी बनी रहती है। इस प्रकार यह तकनीक पौधे के लिए सुरक्षित, नम और गर्म सूक्ष्म वातावरण (microclimate) तैयार करती है।

पॉलिथीन द्वारा खरपतवार नियंत्रण का कार्य-तंत्र (Mechanism of Weed Suppression):

काला पॉलिथीन मुख्यतः दो तरीकों से खरपतवारों को नियंत्रित करता है:

1. प्रकाश अवरोधन (Light Interception): काली पॉलिथीन की अपारदर्शिता (opacity) मिट्टी तक सूर्य के प्रकाश को पहुंचने नहीं देती। प्रकाश के बिना, बीजों में अंकुरण की प्रक्रिया शुरू नहीं होती या अत्यधिक धीमी हो जाती है।

2. भौतिक अवरोध (Physical Barrier): पॉलिथीन फिल्म मिट्टी की सतह को इस प्रकार ढक देती है कि खरपतवार पौधों का ऊपर निकलना असंभव हो जाता है।

3. नमी और तापमान का संशोधन: यह फिल्म मिट्टी की नमी को बनाए रखती है और तापमान में हल्की वृद्धि करती है, जिससे स्ट्रॉबेरी पौधों की जड़ें सक्रिय रहती हैं, लेकिन खरपतवारों को उचित पर्यावरण नहीं मिलता।

स्ट्रॉबेरी में पॉलिथीन मल्चिंग की विधि (Method of Application)

1. सामग्री (Material): सामान्यतः 25 से 50 माइक्रोन मोटाई वाली काली पॉलीथीन शीट का उपयोग किया जाता है। आजकल बायोडिग्रेडेबल (जैव अपघटनीय) फिल्में भी उपलब्ध हैं जो पर्यावरण-अनुकूल विकल्प हैं।

2. खेत की तैयारी (Field Preparation): खेत को अच्छी तरह समतल करके 25–30 सेमी ऊँचे और 60–90 सेमी चौड़े क्यारों (raised beds) का निर्माण किया जाता है। उचित जल निकास (drainage) की व्यवस्था आवश्यक है।

3. पॉलिथीन बिछाना (Mulch Laying): काली पॉलिथीन को क्यारी पर कसकर बिछाया जाता है। किनारों को मिट्टी में दबाया जाता है ताकि हवा अंदर न जा सके और फिल्म स्थिर रहे। पौधारोपण हेतु 5–7 सेमी व्यास के छेद उचित दूरी (30×30 सेमी या 30×40 सेमी) पर बनाए जाते हैं।

4. रोपाई (Planting): स्ट्रॉबेरी के रनर पौधों को छेदों में लगाया जाता है, ध्यान रहे कि क्राउन मिट्टी की सतह के बराबर रहे।

मल्चिंग के लाभ (Benefits)

1. खरपतवार नियंत्रण में प्रभावशीलता: पॉलिथीन से ढकी क्यारियों में खरपतवार घनत्व (weed density) में 90–95% तक कमी देखी गई है। रासायनिक खरपतवारनाशी की आवश्यकता लगभग समाप्त हो जाती है।

2. मिट्टी की नमी संरक्षण: मिट्टी से वाष्पीकरण द्वारा जल हानि 30–40% तक घट जाती है। स्ट्रॉबेरी की उथली जड़ों को निरंतर नमी उपलब्ध रहती है, जिससे फलों का आकार और गुणवत्ता बढ़ती है।

3. मिट्टी के तापमान का नियमन: काला पॉलिथीन सूर्य की गर्मी को अवशोषित कर मिट्टी का तापमान 2–4°C तक बढ़ाता है। यह वृद्धि सर्द मौसम में जड़ों की गतिविधि और पौधे की प्रारंभिक वृद्धि के लिए लाभदायक होती है।

4. उपज और गुणवत्ता में सुधार: फलों का मिट्टी से संपर्क न होने के कारण फल साफ और रोग-मुक्त रहते हैं। कुल घुलनशील ठोस पदार्थ (TSS) और शर्करा की मात्रा अधिक होती है, जिससे स्वाद और रंग बेहतर बनता है। अनुसंधान परिणामों से पता चला है कि काली पॉलिथीन मल्च से उपज में 25–40% तक वृद्धि संभव है।

5. रोग एवं कीटों में कमी: मिट्टीजनित फफूंद, सड़न और घुन (mites) की संख्या घट जाती है। फलों में ग्रे मोल्ड (Botrytis cinerea) जैसी बीमारियों की संभावना कम होती है।

6. जल उपयोग दक्षता (Water Use Efficiency): ड्रिप सिंचाई के साथ पॉलिथीन का उपयोग जल दक्षता को 30–35% तक बढ़ा देता है।

7. श्रम लागत में कमी: खरपतवारनाशी, निराई-गुड़ाई, और सिंचाई कार्य में लगने वाला श्रम घटता है, जिससे उत्पादन लागत में 15–20% की बचत होती है।

निष्कर्ष

स्ट्रॉबेरी में काली पॉलिथीन मल्चिंग का उपयोग एक वैज्ञानिक, किफायती और पर्यावरणीय दृष्टि से उपयुक्त तकनीक है, जो खरपतवार नियंत्रण के साथ-साथ मिट्टी की नमी, तापमान और पोषक तत्वों की दक्षता को भी बढ़ाती है। यह तकनीक न केवल उत्पादन लागत घटाती है बल्कि उपज, फल की गुणवत्ता और बाजार मूल्य को बढ़ाती है।■

फल वृक्षों में माइक्रोबायोम इंजीनियरिंग: जड़ क्षेत्र के सूक्ष्मजीवों की भूमिका

शिव कुमार अहिरवार

पीएच.डी. शोधार्थी

उद्यानिकी (फल विज्ञान) विभाग, कृषि महाविद्यालय, जे.एन.के.वि.वि., जबलपुर (मध्यप्रदेश)

प्रस्तावना

भारत और दुनिया में फलों की खेती न केवल आर्थिक समृद्धि का आधार है बल्कि पोषण सुरक्षा और स्थानीय आजीविका का भी आधार है। यह क्षेत्र जलवायु परिवर्तन, मिट्टी की गिरावट, पोषण संबंधी असंतुलन और उपज में स्थिरता जैसे गंभीर तनावों से जूझ रहा है। पारंपरिक प्रबंधन प्रणाली लगातार उत्पादन बढ़ाने में सीमित हैं, इसलिए वैज्ञानिकों का ध्यान पौधों के साथ सहजीवी सूक्ष्मजीव समुदायों की ओर आकर्षित हुआ है। फलों की जड़ों के आसपास का राइजोबायोम (राइज़ोस्फ़ियर और एंडोस्फ़ियर का सामुदायिक सूक्ष्मजीव संसार) पौधों के स्वास्थ्य और उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है। इसीलिए हाल के वर्षों में माइक्रोबायोम इंजीनियरिंग – अर्थात् पौधों के जड़ क्षेत्र में लाभदायक सूक्ष्मजीवों की संरचना और कार्य को निर्देशित रूप से बदलने – को टिकाऊ फलोत्पादन की प्रमुख रणनीति के रूप में देखा जा रहा है।

जड़ क्षेत्र और राइजोबायोम का महत्व

हर पौधे की जड़ के चारों ओर कुछ मिलीमीटर का क्षेत्र भोजन, पानी और सूक्ष्मजीवों से भरा होता है जिसे राइज़ोस्फ़ियर कहा जाता है। यह क्षेत्र अत्यंत सक्रिय जैविक माइक्रो-पर्यावरण है जिसमें प्रति ग्राम मिट्टी लगभग 109 सूक्ष्मजीव पाए जाते हैं। राइज़ोस्फ़ियर और जड़ के भीतर के एंडोस्फ़ियर में उपस्थित यह सामुदायिक सूक्ष्मजीव समूह मिलकर राइजोबायोम बनाते हैं। इसमें नाइट्रोजन-स्थिरीकरण करने वाली बैक्टीरिया, फास्फोरस घुलनशील बनाने वाले जीवाणु, माईकोराइजा कवक, एंडोफाइट्स और रोगनिरोधक सूक्ष्मजीव शामिल होते हैं। ये समुदाय पौधे से निकलने वाले रसायनों (जैसे कार्बोहाइड्रेट, अमीनो अम्ल, कार्बोनिक एसिड, फ़ेनोलिक) के माध्यम से पौधे के साथ संवाद करते हैं और पौधे की वृद्धि, पोषण तथा प्रतिरोध क्षमता को प्रभावित करते हैं। राइजोबायोम की संरचना को पौधे की जाति/जीनोटाइप, विकास

चरण, मिट्टी के गुण और मौजूदा सूक्ष्मजीविता जैसे कारक नियंत्रित करते हैं। इन कारकों को समझ कर हम राइजोबायोम को ऐसी दिशा में मोड़ सकते हैं जो पौधों को तनावों से उबरने में मदद दे।

चित्र. 1&2: मापक सिलेंडर द्वारा पीजीपीआर (स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस) का परिमाण निर्धारण

चित्र. 3&4: आम के पौधे के चारों ओर गड्ढेनुमा घेरा बनाना तथा पीजीपीआर (स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस) का प्रयोग

लाभदायक सूक्ष्मजीव: PGPR, माइकोराइजा और अन्य

पौध वृद्धि संवर्धक राइज़ोबैक्टीरिया (PGPR)

पौध वृद्धि संवर्धक राइज़ोबैक्टीरिया (Plant Growth-Promoting Rhizobacteria) राइज़ोस्फ़ियर और जड़ों पर रहने वाले लाभदायक बैक्टीरिया हैं जो फलों सहित विभिन्न फसल पौधों में पोषण, वृद्धि और प्रतिरोध क्षमता को बेहतर बनाते हैं। वे नाइट्रोजन स्थिरीकरण, फ़ॉस्फ़ेट व जिंक के खनिजीकरण, लौह प्राप्ति के लिए साइडरोफ़ोर उत्पादन, विटामिन-हॉर्मोन (ऑक्सिन, साइटोकिनिन, गिबेरेलिन) का निर्माण, एसीसी डीएमाइनेज़ के ज़रिये इथाइलीन स्तर में कमी और रोगग्रस्त पथों की रोकथाम आदि कार्य करते हैं। PGPR निर्जलीकरण, लवणता और तापमान जैसे तनावों से पौधे को उबारने में भी मदद करते हैं। उदाहरण के लिए, कुछ PGPR स्ट्रेन – *Klebsiella variicola*, *Raoultella planticola* व *Pseudomonas fluorescens* – पौधों में ग्लाइसिन-बीटाइन और कोलीन जैसे आस्मोप्रोटेक्टेंट जोड़कर सूखे के प्रति सहनशीलता बढ़ाते हैं। जब इन बैक्टीरिया को कम्पोस्ट या खनिज उर्वरकों के साथ दिया गया तो पत्तियों में घुलनशील शर्करा और प्रोलिन की मात्रा बढ़ी, जिससे कोशिकीय झिल्ली स्थिर रही और पानी की क्षमता बनी रही। PGPR अकेले से बेहतर परिणाम देने के लिए अक्सर कंसोर्टिया के रूप में प्रयोग किए जाते हैं; विभिन्न प्रजातियां मिलकर एक्सोपॉलीसैकराइड व अन्य माध्यमिक पदार्थ पैदा करती हैं, जो सामूहिक रूप से पौधे को रोगजनकों से बचाते हैं। फिर भी सावधानी आवश्यक है क्योंकि प्रयोज्य बैक्टीरिया को निवासित समुदायों से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है और कुछ परिस्थितियों में लाभ सीमित हो सकता है।

माइकोराइजा

माइकोराइजा जड़ों में रहने वाली सहजीवी कवक हैं। अरबस्कुलर माइकोराइजा (AMF) लगभग 90 % पौध प्रजातियों की जड़ों में पाई जाती हैं और पौधों से कार्बोहाइड्रेट लेकर बदले में जल, फास्फोरस, नाइट्रोजन व सूक्ष्म पोषक तत्वों को पौधे तक पहुंचाती हैं। अरबस्कुलर माइकोराइजा AMF पौधों की बग़ल में सूक्ष्म शाखाओं (हॉस्ट्रोरिया) का निर्माण कर पोषक तत्व विनिमय बढ़ाती हैं। अरबस्कुलर माइकोराइजा AMF-पौधा सहजीवन फलों की शुरुआती वृद्धि, रोपण में जीवित रहने, उत्पादन, गुणवत्ता और तनाव प्रतिरोध को बढ़ाता है। ये कवक पौधों को सूखे एवं खारे पानी से होने वाले तनावों में भी सुरक्षा प्रदान करती हैं। माइकोराइजा हर तरह की मिट्टी में मौजूद हैं और पौधों की जड़ों की सतह बढ़ा कर व्यापक मात्रा में जल-पोषक तत्व ग्रहण करने में मदद करती हैं। माइकोराइजा-उपचारित पौधों में प्रकाश संश्लेषण दर और वृद्धि नियंत्रण पौधों की तुलना में अधिक होती है। साथ ही इन पर सामान्य फफूंदनाशक/शाकनाशी का भी दुष्प्रभाव नहीं पड़ता।

राइजोबायोम और अन्य सूक्ष्मजीव

राइजोबायोम में PGPR और माइकोराइजा के अलावा अनेक फायदेमंद जीवाणु व कवक शामिल हैं। ये सूक्ष्मजीव मिट्टी में जैवउपलब्ध पोषकों की मात्रा बढ़ाते हैं, पौधों में रोग प्रतिरोध प्रणाली को सक्रिय करते हैं और भिन्न-भिन्न तनावों से रक्षा करते हैं। उदाहरण के लिए, एंडोफाइटिक बैक्टीरिया पौधे की जड़ों के अंदर प्रवेश कर नाइट्रोजन स्थिरीकरण एवं फाइटोहार्मोन उत्पादन में सहायता करते हैं।

पौध पोषण और वृद्धि में सूक्ष्मजीवों की भूमिका

फल वृक्षों में पोषण का पर्याप्त प्रबंधन उपज और गुणवत्ता में सीधे परिलक्षित होता है। PGPR और माइकोराइजा मिलकर नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, जिंक, आयरन आदि पोषकों को उपलब्ध कराते हैं। वे ऑक्सिन, साइटोकिनिन और गिबेरेलिन जैसे हॉर्मोन उत्पन्न कर जड़

वृद्धि, कलिका बनना और फलन को प्रोत्साहित करते हैं। PGPR द्वारा उत्पादित ACC डीएमाइनेज़ इथाइलीन के स्तर को घटाकर जड़ जड़ की लंबाई बढ़ाता है, जबकि माइकोराइजा के हाइफ़ल नेटवर्क मिट्टी का ढांचा सुधारते हैं, जल धारण क्षमता बढ़ाते हैं और मिट्टी में रहने वाले सूक्ष्म पोषक तत्वों को पौधों तक पहुंचाते हैं। राइजोबायोम में रहने वाले बैक्टीरिया व कवक पौधों के लिए श्वेत पोशक को सही रूप में परिवर्तित करने, जड़ों की सतह क्षेत्र बढ़ाने और मिट्टी में ह्यूमस बनाने में भी मदद करते हैं। पौधों की जड़ों द्वारा स्रावित अमीनो अम्ल, शर्करा, कार्बनिक अम्ल, फैटी एसिड व बेंज़ोक्सैज़िनोइड्स जैसे यौगिक माइक्रोबियल समुदायों को आकर्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

तनाव सहिष्णुता और रोग प्रतिरोध

जलवायु परिवर्तन से बढ़ते तापमान, सूखा, लवणता, बाढ़, भारी धातु प्रदूषण आदि ने फलों के उत्पादन को प्रभावित किया है। PGPR और माइकोराइजा इन तनावों से लड़ने में कई तरीके से मदद करते हैं।

सूखे और लवणता से बचाव

PGPR कुछ आस्मोप्रोटेक्टेंट (ग्लाइसिन-बीटाइन, प्रोलिन) और एंटीऑक्सीडेंट एंज़ाइम की उत्तेजना करके पौधों को सूखे एवं लवणता के प्रति सहनशील बनाते हैं। वे राइज़ोस्फ़ियर में EPS (एक्सोपॉलीसैकराइड) बना कर मिट्टी के कणों को जोड़ते हैं, जिससे पानी की उपलब्धता और जड़ संपर्क बढ़ता है। AMF द्वारा निर्मित हाइफ़ल नेटवर्क मिट्टी में जल की खोज सीमा बढ़ाते हैं और जड़ों में ऑस्मोमोड्यूलेशन के लिए आवश्यक आयन संतुलन बनाए रखते हैं।

तापमान, भारी धातु और अन्य तनाव

राइजोबायोम में विविधता बढ़ाकर पौधों की बीमा परिकल्पना के अनुरूप कई लाभ प्राप्त होते हैं; ज्यादा जैव विविधता वाले समुदाय संकट काल में भी कार्य को बनाए रखते हैं और पौधे की प्रतिरोध क्षमता में वृद्धि करते हैं साथ ही कुछ सूक्ष्मजीव एंटीऑक्सीडेंट एंज़ाइम व साइडरोफोर का उत्पादन करते हैं, जो भारी धातु विषाक्तता और धातु-प्रेरित ऑक्सीडेटिव स्ट्रेस को कम करते हैं। माइकोराइजा और एंडोफाइटिक जीवाणु पौधों में रोग-प्रतिरोध जीन के अनुप्रयोग को बढ़ाकर अनेक रोगजनकों (फफूंद, बैक्टीरिया, नेमाटोड) के प्रति प्रतिरोध विकसित करते हैं।

माइक्रोबायोम इंजीनियरिंग रणनीतियाँ

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में उन्नति ने माइक्रोबायोम को वांछित दिशा में आकार देने की कई रणनीतियाँ विकसित की हैं।

होस्ट-प्लांट (पौध) आधारित प्रबंधन

पौधों के जीनोटाइप और किस्में राइजोबायोम की संरचना पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती हैं। इसीलिए वैज्ञानिक ऐसे फल-प्रजाति/कल्टीवर विकसित करने पर काम कर रहे हैं जिनकी जड़ें लाभदायक सूक्ष्मजीवों को अधिक आकर्षित कर सकें। क्रिस्पर जीन संपादन उपकरण से जड़ों के स्रावित यौगिकों में परिवर्तन कर लाभदायक माइक्रोबों की भर्ती बढ़ाई जा सकती है। ग्रहणशील या उच्च-उपज वाले जीनोटाइपों से संबद्ध सूक्ष्मजीव समुदायों की पहचान कर उन्हें सिंथेटिक सामुदायियों के तौर पर तैयार करना भी एक दिशा है।

मिट्टी-आधारित प्रबंधन

जैविक खाद, हरी खाद, कम्पोस्ट, बायोकोल, रॉक फॉस्फेट, जैवउर्वरक, नैनो-उर्वरक और जैव स्टिमुलेंट के प्रयोग से मिट्टी की भौतिक-रासायनिक विशेषताएं बदली जा सकती हैं और माइक्रोबायोम पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। मिट्टी में नमी बनाए रखने, कार्बन स्रोत उपलब्ध कराने और pH को अनुकूल बनाए रखने से लाभदायक माइक्रोब्स का बढ़ाव होता है। अच्छे कृषि अभ्यास और रोटेशन, कवर-क्रॉप और जैविक मल्च के उपयोग से राइजोबायोम अधिक विविध और संतुलित रहता है।

माइक्रोब-आधारित प्रबंधन

लाभदायक सूक्ष्मजीवों का पृथक्करण, चयन और बड़े पैमाने पर उत्पादन करके पौधों में इनका इनोकुलेशन एक महत्वपूर्ण रणनीति है। PGPR, माइकोराइजा, एंडोफाइट्स और उनके मिश्रित कंसोर्टिया विभिन्न फलों (आम, अमरूद, अनार, अंगूर, एवोकाडो, टमाटर, तरबूज आदि) में उपयोग हो रहे हैं। माइक्रोब कंसोर्टिया अक्सर अकेली प्रजातियों से अधिक प्रभावी होते हैं क्योंकि वे सह-पोषण, सूक्ष्म वातावरण संशोधन और रोग नियंत्रण में सामूहिक रूप से कार्य करते हैं। राइजोबायोम ट्रांसप्लांटेशन – अर्थात् एक स्वस्थ पौधे/मिट्टी से सूक्ष्मजीवों की पूरी समुदाय को लक्ष्य पौधे के पास स्थानांतरित करना – एक उभरती तकनीक है। हालांकि इसे लागू करने में अभी कई चुनौतियां हैं, जैसे अंतर्निहित मिट्टी-जीव समुदाय के साथ प्रतिस्पर्धा, जीवों की स्थापित होने की क्षमता और पर्यावरणीय कारकों का अनुकूलन।

ग्राफ्टिंग और रूटस्टॉक चयन

फल वृक्षों में खासकर टमाटर, अंगूर, साइट्रस और एवोकाडो में ग्राफ्टिंग/कलम बांधने का रिवाज है। रूटस्टॉक (नीचे का हिस्सा) पौधे की पोषण, जल uptake और रोग प्रतिरोध गुणों को नियंत्रित करता है और उसका जड़ क्षेत्र विशिष्ट राइजोबायोम बसाता है। अध्ययनों में पाया गया

है कि उपयुक्त रूटस्टॉक वाले ग्राफ्टेड पौधे मिट्टी-जनित रोगों के प्रति अधिक प्रतिरोधी होते हैं, पोषण उपयोग दक्षता बेहतर होती है और फल उत्पादन भी अधिक होता है।

केस अध्ययन

1. एवोकाडो में माइकोराइजा और PGPR का अनुप्रयोग– एवोकाडो में किए गए प्रयोगों से पाया गया कि माइकोराइजा और PGPR के प्रयोग से पौधों की लवणता सहिष्णुता बढ़ती है और पत्तियों में पोषक तत्वों का संतुलन बेहतर होता है।

2. टमाटर में रूटस्टॉक और राइजोबायोम – अमेरिका में किए गए प्रयोग में टमाटर की विभिन्न रूटस्टॉक-स्कोन संयोजन की तुलना की गई। परिणामों से पता चला कि रूटस्टॉक जीनोटाइप राइजोबायोम की विविधता और संरचना को प्रभावित करते हैं; कुछ रूटस्टॉक-स्कोन संयोजन ऐसे बैक्टीरिया समुदायों से जुड़े थे जिनसे उच्च उपज और रोग प्रतिरोध पाया गया।

3. सूखे में पौध-माइक्रोब पारस्परिकता – सूखे के समय पौधे 'cry for help' संकेत भेजते हैं और जड़ों के आसपास सूक्ष्मजीव समुदायों को सक्रिय रूप से आकर्षित करते हैं। । रूट-असोसिएटेड माइक्रोबायोम में पौधे की तुलना में 10–100 गुना ज्यादा जीन होते हैं; इनकी क्रॉस-टॉक सूखे एवं पौधे के बीच अब भी पूरी तरह समझी नहीं गयी है और इसे समझना फसल लचीलापन बढ़ाने की कुंजी हो सकता है।

चुनौतियाँ और भविष्य की दिशा

माइक्रोबायोम इंजीनियरिंग की अपार संभावनाओं के बावजूद कई चुनौतियाँ भी हैं।

- **प्रतिस्पर्धा और स्थायित्व–** बाहरी रूप से दिए गए सूक्ष्मजीव स्थानीय समुदायों से प्रतिस्पर्धा करते हैं और कई बार मिट्टी में टिक नहीं पाते। कंसोर्टियम अनुप्रयोग से जीवित रहने की क्षमता बढ़ सकती है लेकिन इसकी संरचना और खुराक का अनुकूलन आवश्यक है।
- **परजीवी और रोगजनक जोखिम** – पौधों द्वारा निकलने वाले सिग्नल्स को रोगजनक या परजीवी जीव भी हाइजैक कर सकते हैं। इसीलिए माइक्रोब चयन में उनकी सुरक्षा प्रोफ़ाइल और पारिस्थितिकी पर विचार जरूरी है।
- **किस्म विशेषता और पर्यावरणीय कारक** – पौधे का जीनोटाइप, मिट्टी का प्रकार, कृषि पद्धतियाँ और जलवायु मिलकर सूक्ष्मजीवों के प्रभाव को निर्धारित करते हैं। एक ही माइक्रोब अलग-अलग फलों या क्षेत्रों में भिन्न प्रदर्शन कर सकता है।
- **बायोसुरक्षा एवं विनियमन** – संशोधित या विदेशी सूक्ष्मजीवों के उपयोग से जुड़ी बायोसुरक्षा और नियामक समस्याएं हैं। नैनो-प्रौद्योगिकी या जीन संपादन आधारित रणनीतियों के लिए पारदर्शी मूल्यांकन और पर्यावरणीय प्रभाव अध्ययन आवश्यक हैं।

निष्कर्ष

फल वृक्षों के जड़ क्षेत्र में विविध सूक्ष्मजीव समुदाय छिपे हुए खजाने की तरह हैं। PGPR, माइकोराइजा और अन्य लाभदायक जीवाणु/कवक फलों के पोषण, वृद्धि और प्रतिरोध में क्रांतिकारी भूमिका निभा रहे हैं। राइजोबायोम की संरचना को समझ कर और उसको इंजीनियर करके हम भविष्य के कृषि-प्रणालियों को अधिक टिकाऊ, उत्पादक और पर्यावरण-मैत्री बना सकते हैं। हालांकि इस मार्ग में चुनौतियाँ हैं, परंतु उचित शोध, सावधान नियमन और किसानों की भागीदारी से माइक्रोबायोम इंजीनियरिंग फलों की खेती में हरित क्रांति जैसी भूमिका निभा सकती है।■

अमरूद में प्रमुख कीटों का समेकित प्रबंन्धन

डा॰ सुनील कुमार मंडल एवं डा॰ सुरेन्द्र प्रसाद
सहायक प्राध्यापक, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, झंझारपुर
किट विज्ञान विभाग, सनातकोत्तर महाविद्यालय, पूसा
डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार

फल उत्पादन में चीन के बाद भारत का विश्व में दुसरा स्थान है। हमारे देश में आम, केला तथा नींबू वर्गीय फलों के बाद अमरूद चौथा प्रमुख फल है। अमरूद को ''गरीब का फल'' कहा जाता है। इसका फल मीठा, मधुर सुगंध वाला, पाचक एवं स्वादिष्ट होता है। इन फलों में प्रचुर मात्रा में विटामिन-'सी' पाया जाता है। इन फलों को ताजा खाने के अतिरिक्त जैम व जैली बनाने में भी प्रयोग किया जाता है। अमरूद भारत में लगभग सभी स्थानों पर पैदा किया जाता है। इसे मुख्य रूप से बिहार (प्रथम), आंध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, तामिलनाडु तथा राजस्थान प्रदेशों में उगाया जाता है। वित्तीय वर्ष 2023 में, भारत में उत्पादित अमरूद की मात्रा लगभग 5.59 मिलियन मीट्रिक टन होने का अनुमान है। यह पिछले वित्तीय वर्ष से मामुली वृद्धि थी। 2023 में देश में अमरूद की खेती का क्षेत्रफल लगभग 359 हजार हेक्टेयर था। आजकल गृहवाटिका में भी अमरूद को विशेष स्थान दिया जाता है। भारत में अमरूद की औसत उत्पादकता लगभग 16 टन प्रति हेक्टेयर है, जो अन्य विकसित देशों से कम है, इनके कई कारक है और इन कारकों में से कीट एवं बिमारियाँ प्रमुख है। अतः अमरूद का सफल उत्पादन के लिए समय रहते अमरूद फसल को कीटों एवं बिमारियों से सुरक्षा कर अच्छा उत्पादन प्राप्त किये जाए। अमरूद में आक्रमण करने वाले कीटों एवं संक्रमित करने वाले बिमारियों का विवरण एवं उनके नियंत्रण के उपाय निम्न उल्लेखित है।

1. फल मक्खी:

व्यस्क मक्खी धुमैली भूरे रंग की होती है। नर एवं मादा व्यस्कों की पंख की लम्बाई क्रमशः 9-11 तथा 10-14 मि॰मी॰ होती है। नर, मादा कीट से छोटा होता है। इस कीट के मैगट (पिल्लू) हल्के क्रीम रंग के, बेलनाकार एवं 5-8 मि॰मी॰ लम्बे होते हैं।

यह मक्खी बरसात के फलों को विशेष क्षति पहुँचाती हैं। मादा मक्खी अपनी अण्डनिक्षेपक की मदद से पके हुए फलों में छिद्र बनाकर अण्डें देती हैं। जिनसे बाद में सूंडिया (मैगट्स) निकलती है, वो फल के अन्दर गुदा को खाने लगती हैं। फलों में किण्डवन (फरमनटेशन) होने से गुदा सड़ जाता है जिससे प्रभावित फल भी पकने से पूर्व नीचे गिर जाता है। यह कीट कच्चे फलों को क्षति नहीं पहुँचा सकता, क्योंकि ये मादा मक्ख्यिाँ कच्चे फलों के कठोर छिलके में अण्डे देने के लिए छिद्र बनाने में असमर्थ होती है। प्रभावित फलों को काटकर दिखने पर अन्दर मैंगट (सूंडियाँ) साफतौर पर दिखाई देते हैं। संक्रमित फलें बाद में काले व भूरे रंग में परिणत होने के साथ सड़कर गिर जाते हैं।

ISSN: 3049-2211

नियंत्रण:

- ग्रसित फलों को नियमित रूप से एकत्र करके नष्ट करते रहना चाहिए, ताकि इनके प्रकोप को और फैलने एवं आगे बढ़ने से रोका जा सके।
- गर्मियों में बगीचों की गहरी जुताई करना चाहिए, ताकि मिट्टी के अन्दर छिपे प्यूपा बाहर आ जाय, जो सूर्य की तेज धुप व चिड़िया द्वारा खाकर नष्ट हो जाय।
- अमरूद के बाग के पास अनार का बाग नहीं लगाना चाहिए, क्योंकि फल मक्खी का सबसे अधिक पसन्द का परपोषी अनार का पौधा है।
- **प्रलोभक चुग्गा:** 10 लीटर पानी में 100 ग्राम शक्कर तथा 10 मि०ली० मैलाथियान 50 ई०सी० मिलाकर इसे 100 मि०ली० प्रति मिट्टी व प्लास्टिक के प्याले की दर से प्याली में डालकर जगह-जगह पर पेड़ों पर लटका देना चाहिए।
- फल मक्खी को अमोनिया से बनी ल्यूर या आइसो यूजिनोल नामक रसायन आकर्षित करते हैं। अतः इन्हे किसी कीटनाशक के साथ मिलाकर कीटों को नष्ट किया जा सकता है।
- फलन के मौसम के प्रारम्भ में और फलों के पकने से पहले मैलाथियान 50 ई०मी० या क्वीनालफास 25 ई०सी० (1.5 मि०ली०/लीटर पानी) का छिड़काव 15 दिनों के अन्तराल पर किया जा सकता है।

2. चूर्णी बग (मिली बग):

इस कीट के शिशु एवं वयस्क मोम की तरह सफेद, चपटे एवं अण्डाकर होते हैं। इसे कई बार कवक का जाल भी समझ लिया जाता है। मादा वयस्क पंख विहीन होती है, जबकि नर कीट दो पंखों वाले होते हैं तथा ये गहरे लाल रंग के मृत्कुण (दहिया) होते हैं।

इस कीट के शिशु एवं वयस्क दोनों ही कोमल शाखाओं (टहनियों), पुष्पक्रमों, कोमल पत्तियों व फलों पर चिपक कर उनसे रस चूसते है, जिससे पौधा पीला पड़ने लगता है। पत्तियाँ मुरझाकर सुख जाती है। अत्यधिक प्रकोप होने पर तो फूल भी कम आते हैं तथा उनसे फल भी कम बनते हैं। यह कीट एक लसलसा मीठा पदार्थ (मधुरस) स्त्रावित करता है, जिससे कवक (फफूंद) का आक्रमण भी शुरू हो जाता है। परिणामतः प्रकाश संश्लेषण क्रिया में विघ्न उत्पन्न होती है। इस कीट का प्रकोप फरवरी-मार्च तक पाया जाता है।

नियंत्रण:

- बगीचे में साफ-सफाई का पूर्णतया ध्यान रखना चाहिए। प्रमुख खरपतवारों एवं गाजर घास को उखाड़कर नष्ट करना चाहिए।
- पेड़ के आस-पास की जगह साफ रखना चाहिए तथा सितम्बर तक थाले की मिट्टी को प्रतिमाह पलटते रहना चाहिए, ताकि कीट के अण्डे बाहर आकर नष्ट हो जाय।
- ग्रीष्म ऋतु में पौधों के आधार के पास गुड़ाई व जुताई करनी चाहिए, जिससे कीट के प्यूपे एवं अंडे बाहर आकर सूर्य की तेज धुप एवं ताप में नष्ट हो जाय।
- 50 से 100 ग्राम क्यूनालफॉस (1.5 प्रतिशत चूर्ण) के प्रति पेड़ की दर से थाले में 15-20 से०मी० की गहराई में मिट्टी के साथ मिलाना चाहिए।
- पौधों के तने के चारों तरफ भूमि की सतह से 300 मि०मी० की उँचाई पर 30-40 से०मी० चौड़ी एकल्काथीन सीट (400 गेज) लगाना चाहिए तथा इससे नीचे 15-20 से०मी० भाग तक ग्रीस का लेप कर दें। इस पट्टी को नवम्बर व दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में लगानी चाहिए। इस पट्टी के कारण अण्डों से निकले शिशु उपर नहीं चढ़ पाते हैं और पट्टी के नीचे ही एकत्रित हो जाते है। इनको हाथों से भी मारा जा सकता है या मोनोक्रोटोफास 36 एस०एल० (0.1 प्रतिशत) 1.5 मि०ली०/लीटर पानी का घोल बनाकर छिड़काव करके मारा जा सकता है।
- जब कभी भी पेड़ों पर शिशु कीट दिखाई पड़े तो निम्नलिखित कीटनाशकों में से किसी एक का छिड़काव करना चाहिए।
  - ✓ प्रोफेनोफॉस 50 ई०सी० @ 1 मि०ली०/लीटर पानी
  - ✓ मोनोक्रोटोफॉस 36 एस०एल० @ 1.5 मि०ली०/लीटर पानी
  - ✓ डायक्लोरभॉस 76 ई०सी० @ 1 मि०ली०/लीटर पानी
  - ✓ क्वीनॉलफॉस 25 ई०सी० @ 1.5 मि०ली०/लीटर पानी
  - ✓ डायमेथोएट 30 ई०सी० @ 2.0 मि०ली०/लीटर पानी

3. छाल भक्षक कीट (छाल भक्षक सूंडी):

वयस्क कीट स्थूल मटमैले भूरे रंग का शलभ (ततैया) होता है। जिस पर काले-भूरे रंग के धब्बे होते हैं। अग्र पंख पर भी भूरे रंग के धब्बे होते है, जबकि पिछली जोड़ी पंखों का रंग धुयेंदार सफेद होता है। पंख विस्तार नर व मादा कीट में क्रमशः 35-38 मि०मी० एवं 46-50 मि०मी० होता है। मादा कीट, नर की अपेक्षा बड़ी तथा रंग पीला होतो है।पूर्ण विकसित सूंडी (लार्वा) मटमैला भूरे रंगकी 40-45 मि०मी० लंबी होती है। सूंडियों के शरीर पर छोटे-छोटे बाल होते हैं तथा शरीर के दोनों ओर गहरे भूरे दाग होते हैं।

कीट की सूंडिया अमरूद की छाल, शाखाओं या तनों विशेषकर उनके, जोड़ वाले स्थानों में छिद्र करके अन्दर छिपी रहती है। रात्रि में ये इन छिद्रों से निकलकर पौधों की छाल को खाकर क्षति पहुँचाती है। ये रेशमी धागों से जुड़े हुए लकड़ी की टुकड़ों व अपने मल से

ISSN: 3049-2211

बने रक्षक आवरण के नीचे खाती हुई टेढ़ी-मेढ़ी रास्ता बनाती है। अधिकांशतः ये रास्ते छिद्र के नीचे की तरफ होती है। एक छिद्र में प्रायः एक सूंडी ही पायी जाती है। छोटे पौधों में इसका प्रकोप होने पर पौधा बिमार दिखाई देता है और बढ़वार रूक जाती है। शाखाएं कमजोर होकर कभी-कभी पेड़ से अलग हो जाती है। यह देखा गया है कि इस कीट का प्रकोप काली मिट्टी तथा अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में अधिक होता है और 42-46 प्रतिशत तक पौधे ग्रसित पाये गये है।

नियंत्रणः

- बाग की स्वच्छता और पौधों की सघनता को सीमित रखकर कीट की संख्या वृद्धि को सीमित किया जा सकता है।
- कटी-फटी छाल या ढ़ीली छाल को हटा देना चाहिए, ताकि वयस्क मादा कीट अण्डे न देने पाये। सूखी एवं ग्रसित तनों व शाखाओं को काटकर जला देना चाहिए।
- पौधों में कम छिद्र हो तो लोहे के तार से ही छिद्र में सूंडियों को मार देना चाहिए।
- सूंडियों के द्वारा किये गये छिद्रों में डायक्लोरभास 76 ई॰सी॰ का 2-3 मि॰ली॰/लीटर पानी का घोल डालकर भी अन्दर उपस्थित सूंडी को नष्ट किया जा सकता है।
- सुरंगों में पेट्रोल या क्लोरोफार्म या ई॰डी॰सी॰टी॰ मिश्रण (3-5 मि॰ली॰/सुरंग) को रूई में भिंगोकर भर दें तथा उसे गीली मिट्टी से बंद कर दें।
- पौधें की दो शाखाओं के कक्ष में कीट द्वारा बनाये गये जाले इस कीट की उपस्थिति का आभास देता है। अतः छिद्र में लोहे के तार डालकर सूंडी को मार देना चाहिए। ये उपाय प्रायः छोटे बागों व कम प्रकोप की स्थिति में उपयुक्त होता है।
- शाखाओं पर मैलाथियान 50 ई॰सी॰ या सायपरमेथ्रिन 10 ई॰सी॰ का 2 मि॰ली॰ प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।
- अधिक आक्रमण होने पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 50 ई॰सी॰ का 3 ग्राम प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर तने के चारो तरफ लेप कर देना चाहिए।
- सुरंगों में कार्बोफ्यूरान 3जी का 5 ग्राम प्रति छिद्र अथवा सेल्फास (एल्यूमिनियम फास्फाईड) की 1 गोली (3 ग्राम) प्रति छिद्र में डालकर कच्ची मिट्टी से बन्द कर देना चाहिए।

4. सम्पुट वेधक (प्ररोह एवं फल वेधक):

वयस्क शलभ (ततैया) आकार में छोटे एवं चमकीले पीले रंग के होते हैं। इसके पंखों पर छोटे-छोटे काले धब्बे पाये जाते हैं। इस कीट के पूर्ण विकसित सूंडियां (लार्वे) गुलाबी रंग की होती है, जिसपर छोटे काले धब्बे होते हैं। सुंडियों की लम्बाई लगभग 1.5 से॰मी॰ होती है।

इस कीट की सुडियां अमरूद के फल, कलियों एवं प्ररोहों को खाकर क्षति पहुँचाती है। अण्डों से निकलने के बाद सूंडियां पहले प्ररोहों एवं कलियों को वेधती है एवं बाद में बढ़ते हुए फलों के गुदे और बीजों को खाती है, जिससे फलें पकने से पहले ही गिर जाते हैं। प्रभावित फलों का स्वरूप सूंडियों के अन्दर जाने वाले छिद्र के पास खराब हो जाता है। सूंडियों के द्वारा छिद्रों से विसर्जित मल निकलता हुआ देखा जा सकता है। ऐसे प्रभावित फल कमजोर होकर सड़ जाते है और अंत में गिर जाते हैं। क्षतिग्रस्त प्ररोह एवं कलियां भी मुरझाकर सुख जाती है। कभी-कभी फलें भी पकने से पूर्व गिर जाते हैं। इस कीट के द्वारा 16.4-82.6 प्रतिशत तक फल-फूल क्षतिग्रस्त हो जाते है।

नियंत्रणः

- अमरूद बाग के पास अनार का बाग नहीं लगाना चाहिए, क्योंकि इस नाशक कीट का सबसे अधिक पसंद का परपोषी अनार का वृक्ष है।
- ग्रसित फलों को नियमित रूप से एकत्र करके नष्ट करते रहना चाहिए, जिससे इस कीट के प्रकोप को और फैलने एवं आगे बढ़ने से रोका जा सके।
- रात्रि में एक लाईट ट्रेप (प्रकाश प्रपंच) प्रति हैक्टेयर लगाना चाहिए, जिससे व्यस्क कीट को प्रकाश में आर्कषित होने के उपरान्त मारा जा सके।
- फल मौसम के प्रारम्भ में और फलों के पकने से पूर्व मैलाथियान 50 ई॰सी॰ या क्वीनालफॉस 25 ई॰सी॰ (1.5 मि॰ली॰/लीटर पानी) का प्रथम छिड़काव फूल आते समय तथा अगला छिड़काव फल बनते समय करना चाहिए। प्रकोप की अधिकता होने पर पुनः छिड़काव 15 दिनों के बाद करना चाहिए।

5. अनार की तितली:

यह अनार का प्रमुख कीट है, परन्तु अमरूद में भी इस कीट का अधिकाधिक प्रकोप होता है। कभी-कभी इस कीट के द्वारा सम्पूर्ण फसल बर्वाद हो जाती है।

इस कीट का पूर्ण विकसित सूंडी गहरे-भूरे रंग के साथ 17-20 मि॰मी॰ लम्बी होती है। इसके सम्पूर्ण शरीर पर छोटे-छोटे बालों के साथ उजला धब्बा होता है। वयस्क नर चमकीला हल्का नीला-बैगनी रंग का होता है, जबकि मादा कीट भूरापन लिए हुए बैगनी रंग की होती है तथा पंख पर नारंगी रंग के धब्बे होते हैं। इनके पंख का फैलाव 40-50 मि॰मी॰ होता है।

सूंडियां फलों में छिद्र करके गुदा के साथ बीज को भी खाती है। फलों के छिद्र में सूंडियों का आधा शरीर घुसाकर लटकते हुए देखा जा सकता है। एक फल में आठ-दस की संख्या में सूंडियां पायी जाती है।

आक्रान्त फल में फफूंद और जीवाणु का आक्रमण भी हो जाता है, फलस्वरूप फल सड़ने लगता है। जिससे प्रभावित फल काला होकर सड़न के साथ दुर्गन्ध आने लगती है और अन्त में गिर जाती है। इस कीट से 40-90 प्रतिशत तक फल क्षतिग्रस्त हो सकते है।

नियंत्रण:

- नियमित रूप से ग्रसित फलों व पेड़ों से गिरे हुए क्षतिग्रस्त फलों को एकत्रित करके नष्ट करते रहना चाहिए।
- गर्मियों मे बाग की गहरी जुताई करना चाहिए, ताकि प्यूपा बाहर आ जाय जो सूर्य की तेज धूप व चिड़ियों के द्वारा नष्ट किया जा सके।
- गृह वाटिका या छोटे वाग में फल के पकने से पहले कागज या पोलीथीन के बैग से ढक देने पर इन्हे क्षतिग्रस्त होने से बचाया जा सकता है।
- फूल आने वाली अवस्था में नीम उत्पाद (नीम गोल्ड व नीमीसिडीन 1500 पीपीएम) का 2 मि०ली० प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करना चाहिए।
- मैलाथियान 50 ई०सी० (2मि०मी०/लीटर पानी) या नोभल्यूरान 10 ई०सी० या क्वीनालफाँस 25 ई०सी० (1.25 मि०ली०/लीटर पानी) का पहला छिड़काव फूल बनते समय तथा अगला फल बनते समय करना चाहिए। अधिक प्रकोप की स्थिति में तीसरा व चौथा छिड़काव 15 दिनों के अन्तराल पर करना चाहिए।

*****

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान

मनोज कुमार प्रजापति- कृषि और संबद्ध विज्ञान संकाय, यूनाइटेड यूनिवर्सिटी, झलवा रावतपुर प्रयागराज (उत्तर प्रदेश)
गोविंद विश्वकर्मा*- मृदा विज्ञान विभाग, डॉ. राजेंद्र प्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर (बिहार)

सदियों से भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है। देश की कुल आबादी का 70 % ग्रामीण जनसंख्या कृषि पर आत्मनिर्भर है। जिसमें से लगभग 86.20 फीसदी कृषक छोटे और सीमांत वर्ग में शामिल हैं। देश के कुल रोजगार में 42 फीसदी रोजगार सिर्फ कृषि से प्राप्त होता है। जो ग्रामीणों की आय का प्रमुख स्रोत है। भारत, देश के कुल सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का लगभग 16.80% फीसदी भागेदारी कृषि एवं उससे संबंधित क्षेत्र से प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त अनुमानित कृषि वृर्दिध दर (% गर्षिक) 8.70 फीसदी तक दर्ज की जा चुकी है। जो देश की अर्थव्यत्यया को सुदृढ़ बनाने और वैश्विक स्तर पर एक नया आयाम सुनिश्चित करने में अभूतपूर्व भूमिका निभाता है। कृषि देश का सबसे बड़ा नियोक्ता है। भारत मुख्य खाद्यान उत्पादन (गेहूँ और चावल) में अग्रणीय देश है जो देश की 1.3 विलियन जनसंख्या के लिए वैश्विक खाद्य सुरक्षा और स्थिरता सुनिश्चित करती है। भारत, विश्व का सबसे बड़ा दलहन (25%), दूध (24%), मसाला, जूट (50.51%) और भैस-गाय (50%) के उत्पादन में प्रथम स्थान रखता है। भारत, चीन के बाद दूसरा सबसे बड़ा धान, गेहूँ, कपास, गन्ना, फल, सब्जी, मछली, भेड़-बकरी मॉस और चाय उत्पादक देश है। जिसमें में से फल और सब्जी उत्पादन का 11.80 और 12-20 फीसदी क्रमशः हिस्सेदारी रखता है।

इसके अतिरिक्त नगदी फसलों में जैसे. आल्लू, गन्ना, तम्बाकू, कॉफी चाय और जूट का उत्पादन में हिस्सेदारी क्रमश: 14.20%, 20.80%. 11.70%, 40.0%, 20.6% और 50.51% है। ध्यातव्य है कि भारत, तम्बाकू उत्पादन में तीसरा स्थान, कॉफी में आठवाँ और रबर में छठवाँ स्थान रखता है। फसल उत्पादन के बजाय, भारत डेरी उत्पादन, लाइव स्टॉक उत्पादन, कुक्कुट पालन, मछली पालन, मधुमक्खी पालन, रेशम कीट पालन और लाख कीट पालन के क्षेत्र में देश की GDP और भारतीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ और मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। देश के कुल लाइव स्टॉक जनसंख्या 535.78 मिलियन है जो कृषि सकल वर्धित मूल्य (GVA) में 30.22% का योगदान रखता है। इसी प्रकार मत्स्यपालन में 7.24 फीसदी और लाख उत्पादन का 80.00 फीसदी का योगदान रखता है। जो विश्व के कुल उत्पादक देशो में प्रथम स्थान रखता है। भारत, विश्व में शहद उत्पादक और निर्यातक देशों में क्रमशः दूसरे और तीसरे स्थान पर है। भारत ने 2021-22 डॉटा के मुताबिक,74413 मैट्रिक टन प्राकृतिक शहद का नियति किया था। रेशम कीट के संदर्भ में, भारत चीन के बाद विश्व का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है जो देश के कुल रेशम उत्पादन (34923 मिलियन टन) में से मलबरी किस्म के रेशम का उत्पादन 74.03 फीसदी, इरी का 21.07 फीसदी, टेशर रेशम का 4.17 फीसदी और मूँगा का 0.73 फीसदी का

योगदान है। वहीं कुक्कुटपालन के परिपेक्ष्य में भारत, विश्व के कुल अण्डा उत्पादन में तीसरा स्थान और मीट उत्पादन में आठवाँ स्थान रखता है, जो देश की कूल GDP का 10 फीसदी और कृष्त GDP का 14 फीसदी का योगदान रखता है। भारत ने 2021-22, में, कुल पोल्ट्री उत्पाद का 320,240.46 मिलियन टन का निर्मात किया था।

आजादी के 75 साल होने से लेकर वर्तमान तक भारतीय कृषि पूरी तरह से मानसून पर निर्भर रही है जिसमें से 63% भाग वर्षा आधारित क्षेत्र और 37%- भाग सिंचित क्षेत्र का है। देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का (320.73 mha) का 197.22 mha भूमि कृषि कार्य के लिए अपनुकूल है, 102.67 (52%) जमीन सिंचित क्षेत्र का है और 26.16 mha जमीन कृषि के अनुकूल है लेकिन उसको परती छोड़ दिया गया है। बाकी 67 जमीन लवण युक्त मृदा है जो खेती के लिए उपर्युक्त नहीं है। वर्तमान में भारत की शस्य सघनता 142.0% दर्ज की गई है। सिंचित क्षेत्र के संदर्भ में, देश में सिचाई का सबसे प्रमुख स्रोत नलकूप । ट्यूबेल (57%), नहर (27%) और तालाब (6%) का है जिसमें से ट्यूबेल द्वारा सिचाई बड़े पैमाने पर की जा रही है।

भारत में व्यापार का इतिहास अंग्रेजो के काल से चलता आ रहा है। अंग्रेजी शासन काल में भारत मसालों का प्रमुख व्यापारिक केन्द्र था। पुर्तगाली शासक वास्कोडिगामा ने भारत में सबसे पहले मसालों का व्यापार किया और 60 गुना का मुनाफा हुआ। वास्कोडिगामा के आने से पहले, भारत में मसालों का व्यापार अरब ट्रेडर और इटली के व्यापारी व्दारा किया जाता था। रेग्यूलेटिंग एक्ट, 1723 के अनुसार, ब्रिटिश ईस्ट इन्डिया कम्पनी को व्यापारिक एकाधिकार (चीन के साथ व्यापार, चाय का व्यापार) प्राप्त हो गया जो पूर्वी देशों के साथ व्यापार कर सकते थे |

वर्तमान में, वैश्विक स्तर पर निर्यात की जाने वाली कृषि वस्तुएं चावल, मसाला, कपास, फल और सब्जी इत्यादि जो विदेशी मुद्रा भण्डार राजस्व आय और व्यापार घाटा को संतुलित करने में महत्वपूर्ण योगदान देता है। WTO(2023) के अनुसार, भारत का कृषि निर्यात और आयात क्रमश: 2:1% और 1.2%. था। देश के कुल GDP का कृषि निर्यात और आयात का योगदान क्रमश: 11.0 और 5.0 फीसदी था। इसी तरह अप्रैल-जनवरी, 2024 में कृषि उत्पाद के निर्यात का समग्र मूल्य USD $38.65 बिलियन डॉलर जबकि 2022-23 में $ 52.50 बिलियन डॉलर था जो 2022-23 के मुताबिक 35.83 फीसदी की गिरावट देखने को मिली है। वहीं दूसरी तरफ, 2024 के डाटा के मुताबिक कृषि नियति $4.9 विलियन डॉलर जो 2023 के मुताबिक 14.1 फीसदी की वृर्दिध दर्ज की गई।

भारतीय कृषि न केवल देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए बल्कि देश की सामाजिक-धार्मिक और सांस्कृतिक रीति-रिवाजों, ग्रामीण परम्पराओं, त्यौहारों, सामुदायिक जीवन को नया आकार देने और देश की सांस्कृतिक पहचान और ग्रामीण एकता को संरक्षित करने में अहम भूमिका निभाता है। विगत कुछ वर्षों से बदलते मौसम जिसमे जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग जैसे विकट समस्याओं के चलते कृषि उत्पादन पर प्रतिकून प्रभाव पड़ा है और साथ ही साथ जीव-जन्तुओं, और मानव जीवन पर पर्यावरणीय दुष्प्रभाव चलते प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इसी पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान के लिए “टिकाऊ खेती” एक बेहतर विकल्प के तौर पर भरोसेमंद, पर्यावरण अनुकूल, किफायती, जलवायु लचीलापन, जो मुख्यतः तीन सिद्धान्तो पर आधारित – सामाजिक रूप से स्वीकार्य, आर्थिक रूप से व्यवहार्य और पर्यावरणीय रूप से सुरक्षित, इत्यादि को एक नई दिशा में कृषि को अग्रसर होने की प्रेरणा देता है।

भारतीय कृषि के समक्ष चुनौतियाँ और उसका निदान –

कृषि के क्षेत्र में आने वाली विभिन्न प्रकार की समस्याओं का विचरण इस प्रकार है-

- ✓ कृषि जोत का छोटा आकार होना,
- ✓ अपर्याप्त कृषि अवसंरचना,
- ✓ मिट्टी का क्षरण और पानी की कमी,
- ✓ मानसून पर व्यापक निर्भरता,
- ✓ उत्पादन की पुरानी विधियॉ (परम्परागत कृषि),
- ✓ बीज की निम्न गुणवत्ता,
- ✓ कृषि तकनिकी और शोध अभाव,
- ✓ कीट एवं बीमारियों पर कम नियंत्रण,
- ✓ कृषि साख एवं विपणन की समस्याए,
- ✓ बिचौलियों की लम्बी श्रृंखला,
- ✓ भण्डारण एवं यातायात सुविधाओ का अभाव,
- ✓ सूचना एव पूर्वानुमान तकनीकी की कमी,
- ✓ जलवायु परिवर्तन एवं प्राकृतिक आपदाएँ।

कृषि के क्षेत्र में आने वाली विभिन्न प्रकार की समस्याओं और चुनौतियों से निपटने के लिए केन्द्र स्तर और राज्य स्तर पर विभिन्न प्रकार के प्रोगाम चलाए जा रहे हैं जिससे कृषि में आने वाली बाधाओं का निराकरण और कृषि की उत्पादकता को बढ़ावा मिल सके।

केन्द्र सरकार की प्रमुख योजनाएँ जैसे:-

- प्रधानमंत्री कृषि सम्मान निधि योजना (2019),
- प्रधानमंत्री फसल बीमा घोषाना (2016),
- मृदा स्वास्थ्य कार्ड स्कीम (2015),
- प्रधानमंत्री कृषि सिचाई योजना (2015),
- e-नेशनल एग्रीकल्चर मार्केट (e-NAM, 2016),
- नेशनल मिशन सस्टेनेबल एग्रीकल्चर (NSMA),
- परम्परागत कृषि विकास योजना (2015),
- डिजिटल एग्रीकल्चर मिशन (2020),
- यूनीफाइड फार्मर सर्विस प्लेटफार्म (UFSP),
- नेशनल e-गवर्नेंस प्लान इन एग्रीकल्चर (NeGP-A),
- मिशन आर्गेनिक वैल्यू चेन डेवेलेपमेण्ट फार नार्थ ईस्ट रीजन (MOUCDMER) ईत्यादि।

वर्तमान समय में कृषि की समस्याओं से निपटने के लिए **"समग्र कृषि दृष्टिकोण"** के तहत कृषि को उत्पादन, विपणन और उपभोग को शामिल करने वाली एक व्यापक खाद्रय प्रणाली के रूप में जोर देने की दिशा में कदम उठाया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, कार्बनिक खेती, एकीकृत कीट प्रबंधन, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन को आगे बढ़ाने की दिशा में अग्रसर और सामुहिक खेती के लिए किसान उत्पादक संगठनों (FPO) और सहकारी समितियों को मजबूती प्रदान करने की जरूरत है। " मूल्य श्रृंखला विकास" के तहत उच्च मूल्य वाली फसलों, डेयरी उत्पादों, मत्स्य और मुर्गी पालन के लिए मजबूत एवं प्रभावशाली मूल्य श्रृंखला स्थापित करना, इसे हासिल करने के लिए निजी क्षेत्र,सहकारी समितियों और किसान उत्पादक कंपनियों के साथ सहयोग एवं सामजस्य स्थापित करने की दिशा में ध्यान दिया जाना चाहिए। मूल्य श्रृंखला विकास को प्रभावी बनाने और उसका उचित क्रियान्वन करने के लिए उद्योग में उत्पादन से जुड़ी प्रोत्साहन योजना (PLI) के समकक्ष सार्वजनिक-निजी भागेदारी मॉडल पर आधारित योजनाओ पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए।

आधुनिक तकनीकी और बेहतर विपणन अवसंरचना के माध्यम से कृषि उत्पादकता में सुधार और किसानों की आय में बढ़ोत्तरी, और किसानो को उसके कृषि उत्पादों का न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) पर बेचना उचित "कृषि मुल्य क्षेत्र" में पारदर्शिता को बढावा देना, कृषि उत्पादों को वैश्विक बाजार में प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ावा देना, जिससे रणनीतिक साझेदार देशों के साथ बहुपक्षीय व्यापार समझौता और व्यापार विवादों को सुलझाने का तरीका जैसे चुनौतियों का समाधान किया जा सके और विदेशी व्यापार की नीति को वैश्वीकरण की लिहाज से आगे की दिशा में सकारात्मक सोच को बढ़ावा देना चाहिए।

कृषि के क्षेत्र में, तकनीकी अनुसंधान और विकास के साथ-साथ, कृषि तकनीकी शिक्षा और उसका प्रचार-प्रसार करने के लिए कृषि GDP का 10 फीसदी खर्च, जो वर्तमान स्तर पर 0.5 फीसदी से भी कम है, पर अधिक ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। उर्वरक क्षेत्र में दी जाने वाली सब्सिडी में बेहतर सुधार के लिए सब्सिडी का क्रियान्यवन कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय के अधीन कर दिया जाना चाहिए, जो पहले यह रसायन और उर्वरक मंत्रालय के अन्तर्गत संचालित होता था जिससे N:P:K के अनुप्रयोग को संतुलित किया जा सके। समावेशी विकास और सामाजिक सुरक्षा के लिहाज से फसल बीमा योजना और आय सहयोगी प्रोग्राम, और कृषि आय को स्थिरता प्रदान करने के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य पर फसलों की खरीद का आश्वासन देने पर ध्यान केन्द्रित करने की जरूरत है। जलवायु अनुकूल खेती, प्राकृतिक खेती के साथ-साथ प्रोटेक्टेट कल्टीवेशन, जलसंख्क्षण की पद्धतियों और प्राकृतिक संसाधनों के अनुकुलतम प्रयोग व्दारा कृषि की उत्पादकता को, बिना किसी पर्यावरणीय दुष्प्रभाव से, सस्टेनेबल तरीके से बढ़ाया जा सकता है।

उपसंहार

कृषि विकास के लिए बेहतर वातावरण तैयार करने वाले नीतिगत सुधारों को अपनाने से, भाति अपने कृषि क्षेत्र की पूरी क्षमता को अनलॉक करने में सक्षम होगा, जिससे यह राष्ट्रीय विकास की आधारशिला ही नहीं बल्कि लाखो किसानों के लिए स्थाई आजीविका, खाद्य सुरक्षा और समावेशी विकास को बढ़ावॉ देगा और भारत को कृषि नवाचार और स्थिरता में एक वैश्विक लीडर के रूप में स्थापित करेगा।

****

कृषि नवाचारों का आईसीटी-आधारित विस्तार मॉडल के साथ एकीकरण: व्यापक और स्मार्ट खेती की दिशा में एक मार्ग

पूजा सिंह- पीएच.डी. शोध छात्र, सस्य विज्ञान, चन्द्रशेखर आज़ाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)
नेहा सिंह- सहायक प्रोफेसर, प्रसार शिक्षा एवं संचार प्रबंधन, सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय, आ०न०दे०कृ० एवं प्रौ० वि०वि०, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ कृषि है, जो देश की आधी से अधिक आबादी के लिए आजीविका का स्रोत है। हालाँकि, जलवायु परिवर्तन, संसाधनों की कमी और बढ़ती जनसंख्या जैसी चुनौतियों ने कृषि क्षेत्र में नवाचार और बदलाव की आवश्यकता को बढ़ा दिया है। पारंपरिक कृषि पद्धतियाँ और विस्तार सेवाएँ इन चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करने में असमर्थ हैं। इस संदर्भ में, कृषि नवाचारों को सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (ICT) पर आधारित विस्तार मॉडल के साथ एकीकृत करना एक क्रांतिकारी कदम साबित हो रहा है। यह एकीकरण न केवल किसानों तक ज्ञान और नवीनतम तकनीकों को पहुँचाता है, बल्कि कृषि को अधिक कुशल, मापनीय और स्मार्ट भी बनाता है।

पारंपरिक विस्तार प्रणाली की सीमाएँ

भारत में कृषि एक जटिल और विविध क्षेत्र है, जहाँ छोटे और सीमांत किसानों की संख्या अधिक है। पारंपरिक कृषि विस्तार मॉडल (जैसे कृषि वैज्ञानिकों के दौरे, किसान सभाएँ), जो मुख्य रूप से व्यक्तिगत दौरे और प्रदर्शनों पर आधारित था, अपनी कुछ सीमाओं के कारण अब उतना प्रभावी नहीं रहा है। इन सीमाओं में शामिल हैं:

- ❖ **सीमित पहुँच:** कृषि विस्तार कार्यकर्ताओं की संख्या सीमित है, जिससे वे सभी किसानों तक नहीं पहुँच पाते हैं, खासकर दूर-दराज के क्षेत्रों में।
- ❖ **विलंबित जानकारी:** नई तकनीकों और मौसम संबंधी जानकारी को किसानों तक पहुँचाने में समय लगता है।
- ❖ **एक समान दृष्टिकोण:** पारंपरिक मॉडल अक्सर किसानों की विशिष्ट ज़रूरतों और क्षेत्रीय विविधताओं पर ध्यान नहीं देता, जिससे सुझावों की प्रासंगिकता कम हो जाती है।
- ❖ **उच्च लागत:** भौतिक दौरे और प्रदर्शनों में अधिक लागत आती है, जिससे यह मॉडल टिकाऊ नहीं है।

कृषि नवाचार और आईसीटी का उदय

पिछले कुछ वर्षों में, कृषि क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण नवाचार हुए हैं:

- ❖ **सटीक खेती:** जीपीएस और जीआईएस जैसी तकनीकों का उपयोग करके, किसान अपने खेतों की स्थिति की बारीकी से

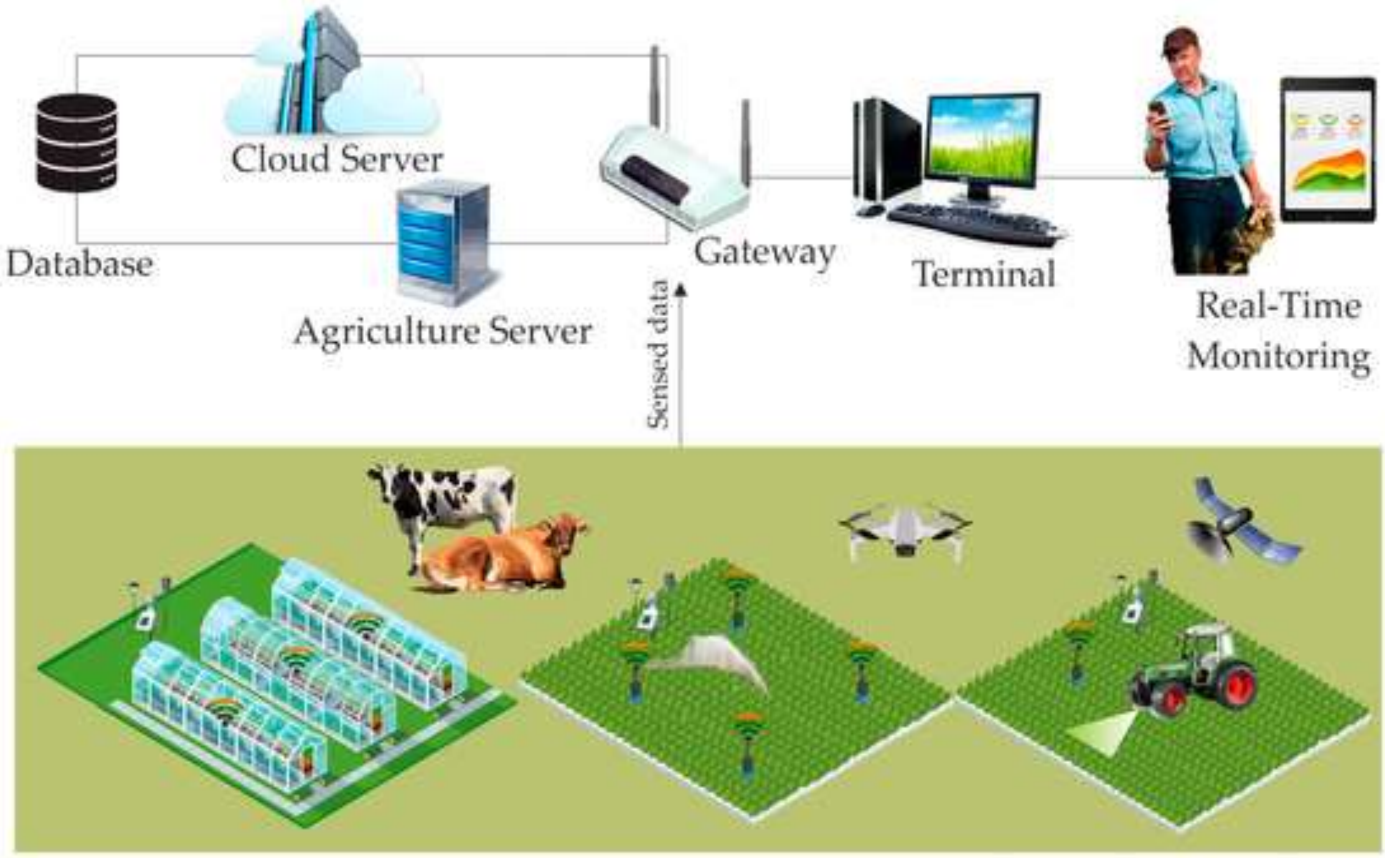

IoT-based Agriculture System

निगरानी कर सकते हैं और संसाधनों (पानी, उर्वरक) का इष्टतम उपयोग कर सकते है।

- **कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) और मशीन लर्निंग (एमएल):** इन तकनीकों का उपयोग फसल की उपज का अनुमान लगाने, बीमारियों और कीटों का पता लगाने और कटाई के लिए बुद्धिमानीपूर्ण निर्णय लेने में किया जाता है।

- **इंटरनेट ऑफ थिंग्स (आईओटी):** सेंसर-आधारित आईओटी उपकरण मिट्टी की नमी, तापमान और आर्द्रता जैसे मापदंडों पर वास्तविक समय का डेटा एकत्र करते हैं, जिससे किसान अपनी कृषि पद्धतियों को स्वचालित कर पाते है।
- **बायोटेक्नोलॉजी:** आनुवंशिक रूप से उन्नत किस्मों का विकास, जो जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक प्रतिरोधी और उत्पादक होती है।

ICT आधारित कृषि विस्तार: एक नवाचार

आईसीटी-आधारित विस्तार मॉडल पारंपरिक तरीकों की कमियों को दूर करने के लिए डिजिटल उपकरणों और तकनीकों का उपयोग करता है। जब किसानों को मोबाइल एसएमएस, व्हाट्सएप ग्रुप, जीआईएस, ड्रोन, ब्लॉकचेन जैसी डिजिटल तकनीकों के माध्यम से जानकारी दी जाती है, तो वे फसल अंतर (Spacing), खरपतवार नियंत्रण, पोषण प्रबंधन और उत्पादन तकनीकों को बेहतर ढंग से अपना पाते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य किसानों को सही समय पर, सही जानकारी

प्रदान करना है, जिससे वे बेहतर और सूचित निर्णय ले सकें। इस मॉडल के प्रमुख घटक और कार्यप्रणाली इस प्रकार है:

1- बहु-स्तरीय सूचना प्रसार:

- **मोबाइल ऐप:** किसानों के लिए विशेष रूप से डिज़ाइन किए गए मोबाइल ऐप, जो स्थानीय भाषा में मौसम का पूर्वानुमान, फसल की सलाह, बाज़ार की कीमतें और सरकारी योजनाओं की जानकारी प्रदान करते है।
- **एसएमएस और वॉयस कॉल:** छोटे और सीमांत किसानों के लिए, जिनके पास स्मार्टफोन नहीं हैं, एसएमएस अलर्ट और इंटरैक्टिव वॉयस रिस्पॉन्स (आईवीआर) सिस्टम के माध्यम से जानकारी भेजी जाती है।
- **कम्युनिटी रेडियो और टेलीविजन:** सामुदायिक रेडियो स्टेशन और कृषि चैनल बड़े पैमाने पर जानकारी का प्रसार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।
- **ऑनलाइन वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग:** विशेषज्ञों के साथ सीधा संवाद स्थापित करने के लिए वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग का उपयोग किया जाता है, जिससे किसान अपने प्रश्नों का त्वरित समाधान प्राप्त कर सकते है।

2- डेटा-संचालित निर्णय निर्माण:

- **सेंसर और ड्रोन:** खेतों में लगाए गए आईओटी सेंसर और ड्रोन से प्राप्त डेटा का विश्लेषण करके मिट्टी की सेहत, फसल की वृद्धि और कीटों के प्रकोप का पता लगाया जाता है।
- **कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) आधारित निदान:** एआई-आधारित ऐप्स किसानों को अपनी फसल की फोटो खींचकर बीमारियों या कीटों की पहचान करने और तुरंत समाधान पाने में मदद करते है।
- **मौसम पूर्वानुमान:** सटीक मौसम पूर्वानुमान के लिए सैटेलाइट डेटा और एआई मॉडल का उपयोग किया जाता है, जिससे किसान बुवाई और कटाई जैसे कार्यों की योजना बना सकते हैं।

3- बाजार और आपूर्ति श्रृंखला का एकीकरण:

- **ई-कॉमर्स प्लेटफ़ॉर्म:** किसानों को सीधे उपभोक्ताओं या व्यापारियों से जोड़ने के लिए डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म का विकास, जिससे उन्हें अपनी उपज का उचित मूल्य मिल सके।
- **ट्रेसिबिलिटी (पता लगाने की क्षमता):** ब्लॉकचेन जैसी तकनीक का उपयोग करके कृषि उत्पादों की उत्पत्ति और यात्रा का पता लगाया जा सकता है, जिससे पारदर्शिता बढ़ती है और ग्राहकों का विश्वास बढ़ता हैं।

4- क्षमता निर्माण और प्रशिक्षण:

- **डिजिटल साक्षरता:** किसानों को आईसीटी उपकरणों का उपयोग करने के लिए प्रशिक्षण देना एक महत्वपूर्ण कदम है। इसमें उन्हें ऐप्स का उपयोग करना और डिजिटल जानकारी तक पहुँच बनाना सिखाया जाता हैं।
- **स्थानीय सामग्री:** जानकारी को स्थानीय भाषा में और प्रासंगिक प्रारूपों में उपलब्ध कराना, जिससे किसान उसे आसानी से समझ सके।

लाभ, चुनौतियाँ और भविष्य की राह

मुख्य लाभ:

कृषि नवाचारों को आईसीटी-आधारित विस्तार मॉडल के साथ एकीकृत करने से कई महत्वपूर्ण लाभ होते हैं।

- **उत्पादकता में वृद्धि:** सटीक खेती और डेटा-आधारित निर्णयों से संसाधनों का बेहतर प्रबंधन होता है, जिससे प्रति एकड़ उपज बढ़ती हैं।
- **किसानों की आय में वृद्धि:** बेहतर उत्पादन, कम लागत और सीधे बाजार तक पहुँच से किसानों की आय में सुधार होता हैं।
- **संसाधनों का कुशल उपयोग:** स्मार्ट सिंचाई और उर्वरक प्रबंधन से पानी और अन्य संसाधनों की बचत होती है, जो सतत कृषि के लिए महत्वपूर्ण हैं।
- **पर्यावरणीय प्रभाव में कमी:** कीटनाशकों और उर्वरकों के लक्षित उपयोग से मिट्टी और पानी का प्रदूषण कम होता हैं।
- **युवाओं को कृषि की ओर आकर्षित करना:** आधुनिक तकनीक का उपयोग कृषि को युवाओं के लिए अधिक आकर्षक और दिलचस्प बनाता हैं।
- **जोखिम प्रबंधन:** मौसम की भविष्यवाणी और कीटों के शुरुआती चेतावनी तंत्र से किसान अपने जोखिमों को बेहतर ढंग से प्रबंधित कर पाते हैं।
- **मापनीयता (स्केलेबिलिटी):** आईसीटी मॉडल भौगोलिक बाधाओं को तोड़कर बड़ी संख्या में किसानों तक कम लागत में पहुँच सकते हैं, जिससे यह मापनीय बनता हैं।

सामने आने वाली चुनौतियाँ

इस एकीकृत मॉडल के रास्ते में कुछ चुनौतियाँ भी है:

ISSN: 3049-2211

- **डिजिटल डिवाइड:** ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट कनेक्टिविटी और डिजिटल साक्षरता का अभाव एक बड़ी चुनौती हैं।
- **उपकरणों की लागत:** कुछ उन्नत प्रौद्योगिकियाँ, जैसे कि ड्रोन और सेंसर, छोटे किसानों के लिए महंगी हो सकती हैं।
- **डेटा गोपनीयता और सुरक्षा:** किसानों के डेटा की गोपनीयता और सुरक्षा सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण हैं।
- **जानकारी की विश्वसनीयता:** गलत या अविश्वसनीय जानकारी का प्रसार किसानों के लिए हानिकारक हो सकता हैं।

समाधान: हाइब्रिड विस्तार मॉडल

केवल डिजिटल माध्यम पर्याप्त नहीं। इसलिए डिजिटल सलाह के साथ-साथ खेत स्तर पर प्रदर्शन (Field Demonstration) और फॉलो-अप विज़िट को जोड़ा जाना चाहिए।

भविष्य की राह: मापनीय और स्मार्ट कृषि की ओर

कृषि नवाचारों और आईसीटी के एकीकरण का भविष्य उज्ज्वल है। आने वाले समय में, हम और भी अधिक परिष्कृत तकनीकों को देखेंगे, जैसे कि रोबोटिक्स और स्वचालित कटाई मशीनें। सरकार की डिजिटल कृषि पहल, जैसे कि 'डिजिटल कृषि मिशन', इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं, जिसका उद्देश्य एक मजबूत और समग्र किसान-केंद्रित डिजिटल पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण करना हैं। यह एकीकृत दृष्टिकोण केवल प्रौद्योगिकी के बारे में नहीं है, बल्कि किसानों को सशक्त बनाने, कृषि को टिकाऊ बनाने और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के बारे में भी है। आईसीटी-आधारित विस्तार मॉडल एक ऐसा मार्ग प्रशस्त करता है, जो कृषि को पारंपरिक सीमाओं से मुक्त करके एक मापनीय और स्मार्ट भविष्य की ओर ले जाता है, जहाँ हर किसान आधुनिकता से जुड़कर समृद्धि की ओर बढ़ सकता हैं।

निष्कर्ष

यदि ICT आधारित विस्तार प्रणाली को कृषि नवाचारों के साथ प्रभावी ढंग से जोड़ा जाए, तो यह न केवल तकनीकों के प्रसार को गति देगा बल्कि किसान सशक्तिकरण, उत्पादकता वृद्धि और सतत कृषि विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

*****

अमलतास (*Cassia fistula*) की जैविक, पारिस्थितिक एवं वानिकी विशेषताएँ

विजय बगारे - मंगलायतन विश्वविद्यालय, जबलपुर
अतुल सिंह - जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर
एन. आर. रंगारे - मंगलायतन विश्वविद्यालय, जबलपुर

वानस्पतिक नाम : केसिया फिस्टुला (*Cassia fistula*)
कुल : लेग्यूमिनोसी (Leguminosae)
प्रचलित नाम : अमलतास

सामान्य परिचय

यह मध्यम आकार का सुन्दर वृक्ष है। यह अनेक प्रकार के शैल समूह तथा उथली जमीन में भी पाया जाता है। तना गोलाकार तथा धूसर वर्ण का होता है। पत्तियाँ एक पक्षाकार, संयुक्त, एकांतर होती है। पुष्प 20 से 40 से.मी. लम्बी लटकती हुई मंजरियों में सुनहरे पीले रंग के आते है। फली 30 से 45 से.मी. लम्बी हरी तथा गोल होती है। पकने पर यह लाल काली हो जाती है। बीज गोल टिकड़ी जैसे, गूदे में धंसे हुए होते है।

वितरण

कैसिया फिस्टुला भारत में लगभग सर्वत्र पाया जाता है। उत्तर में अधोहिमालय तथा बाहरी हिमालय पहाड़ियों पर यह 1200 मी तुंगता तक सिन्धुनदी से लेकर असम तक पाया जाता है।

गंगा के मैदान, मध्य भारत, दक्षिण के पठार तथा दक्षिण भारत में यह साधारणतया पाया जाता है। मध्यप्रदेश के लगभग सभी जिलों में पाया जाता है।

जलवायु

इसके प्राकृतवास में अधिकतम ताप 350से. से 470सें. तक तथा न्यूनतम ताप 00 सें. से 160 से. तक रहता है और वार्षिक वर्षा 500 मिमी से 3000 मिमी तक या अधिक होती है। परन्तु इसका सर्वोत्तम विकास 750 मिमी से 1900 मिमी वर्षा वाले क्षेत्रों में होता है।

मृदा

विस्तृत वितरण से यह स्पष्ट है कि मृदा सम्बन्धी इसकी कोई विशेष मांग नहीं है। यह अनुर्वर उथली मृदाओं तथा मृदाओं तथा हिमालय के शुष्क बाह्य ढालों पर भी उग जाता है।

ऋतु जैविकी

इसमें माह अप्रैल से मई के मध्य फूल एवं सितम्बर से फरवरी तक फल आते है।

वनवर्धनिक लक्षण

यह साधारण प्रकाशापेक्षी है परन्तु कुछ छाया सह लेता है। यह तुषाररोधी नहीं है। यह निश्चित रूप से सूखारोधी है। यह ओजपूर्वक कॉपिस करता है और मुक्त रूप से मूल प्ररोह पैदा करता है। इसे पशु, बकरियां आदि बिल्कुल नहीं चरती, इसीलिए गोचरों में यह बिना किसी कठिनाई के उगता है।

प्राकृतिक पुनरूत्पादन

अमलतास के बीज कठोर फली के अन्दर गूदे में रहते है। पकी फलियों के गिरने पर बन्दर, सियार, सुअर तथा भालू आदि वन्य पशु उसके गूदे को खाने के लिए फलियों को तोड़करबीज विकीरित कर देते है। यदि बीज मृदा से कुछ ढक जाता है तो वह अंकुरित होने पर सुरक्षित रहता है अन्यथा चिड़ियां, कीड़े आदि मूलांकुर को खा जाते है या धूप उसे सुखा देती है। इससे बिजौले मर जाते है। वर्षा ऋतु मे आर्द्र पतन से भी अनेक बिजौले मर जाते है। इन कठिनाईयों के होने पर भी शुष्क पतझड़ी वनों में अमलतास का प्राकृतिक पुनरूत्पादन सन्तोषजनक रहता है।

कृत्रिम पुनरूत्पादन

बीज पकने का समय - मार्च-अप्रैल

बीजभार - 5500 बीज प्रति किलोग्राम

अंकुरण प्रतिशत - 22 से 60

ISSN: 3049-2211

बीज एकत्रीकरण एवं संग्रहण

पकी हुई फलियां वृक्ष से संग्रह कर ली जाती है और उन्हें तोड़कर ठण्डे पानी से धोया जाता है ताकि बीज गूदे से अलग हो जाए। बीज को फिर छाया में सुखा लेते है। बीजों का भण्डारण कई वर्षो तक किया जा सकता है और उनकी अंकुरण क्षमता पर प्रभाव नहीं पड़ता। पूर्व में किये गये अनुसंधानों के अनुसार, 13 वर्ष तक बोरी में रखे बीजों का अंकुरण सन्तोषजनक (लगभग 30 प्रतिशत) पाया गया। एक अन्य अध्ययन में डाट लगी बोतल में 31 वर्ष तक रखे गए बीज का अंकुरण भी 30 प्रतिशत पाया गया। बीज भण्डारण की सबसे अच्छी रीति यह है कि बीज को बोरियों में भरकर ठण्डे तथा शुष्क कमरे में रखा जाए। ताजे बीजों में तुलना में एक वर्ष तक भण्डार में रखे बीज शीघ्रता से अंकुरित होते है। बीज की अंकुरण क्षमता 2 वर्ष तक बनी रहती है।

बीज उपचार

कठोर बीज आवरण के कारण बीज का उपचार अत्यन्त आवश्यक है । उबलते हुए पानी में बीज को पांच मिनट के लिए डालने से अंकुरण 75 प्रतिशत तक पाया गया है। बीज को सान्द्रित सल्फ्यूरिक अम्ल में डुबाने से अंकुरण 35 प्रतिशत पाया गया। परन्तु कुछ अन्वेषकों का मत है कि ठण्डे या गरम पानी के उचार की तुलना में बिना उपचारित बीज में अंकुरण अच्छा होता है।

पुनरूत्पादन विधियां

अमलतास क्षेत्र में सीधे बीज बुवाई, समस्त रोपण तथा मूलमुण्ड रोपण द्वारा पुनरूत्पादित किया जा सकता है।

क्षेत्र में सीधे बीज बुवाई - अमलतास के कृत्रिम पुनरूत्पादन के लिए बीज बुवाई सबसे सरल रीति है। इसके लिए 3 मी अन्तराल पर बनी नालियों की मेंड़ों पर बीज बो दिया जाता है।

रोपणी तकनीक

रोपणी मे पौधे उगाने के लिए बीज रोपणी की क्यारियों में 25 सेमी अन्तराल पर बने खांचों में मार्च - अप्रैल में बोया जाता है। नियमित सिंचाई से बीज अंकुरित होने लगता है। वर्षा प्रारम्भ होने तक पौधे 15 से 30 सेमी ऊंचाई प्राप्त कर लेते हैं और उस समय वे उद्रोपित किए जा सकते है। समस्त रोपण के लिए भूमि से पौधे निकालने के व्यय को बचाने के बीज रोपणी में पौलीथीन थैलियों में बोए जा सकते है। इन पौधों का उद्रोपण भी सरल होता है।

यदि मूलमुण्ड लगाना हो तो पौधों को क्यारी में एक वर्ष तीन महीने रखा जाता है। बिजौले खरपतवार के लिए बहुत संवेदी होते है, अतः रोपणी और रोपवनों दोनों में निराई पर बहुत ध्यान देना चाहिए।

रोपण तकनीक

इसके पौधों का रोपण जून-जुलाई माह में वर्षा होने के पश्चात 2 × 2 एवं 4 × 4 मी. के अंतराल में किया जाना चाहिए।

उपयोग

इसका प्रकाष्ठ टिकाऊ होता है और वह घरों में तथा पुलों में खम्बो के रूप में काम में लाया जाता है। वह कृषि उपकरण तथा बैलगाड़ी के भाग भी बनाने के काम आता है। उससे हथियारों या उपकरणों के उत्कृष्ट दस्ते बनते हैं। इसका प्रकाष्ठ कैम्प फर्नीचर, नावें आदि बनाने के काम भी आता है। इसका काष्ठ श्रेष्ठ ईंधन होता है और उससे बना कोयला भी प्रथम श्रेणी का होता है। इसकी छाल कैसिया आरीकुलेटा की छाल के साथ मिलाकर चर्म शोधन के काम आती है। पकी फलियों का मिठास लिए गूदा बहुत शक्तिशाली रेचक है। यह तम्बाखू को सुगंधित करने के काम भी आता है।

****

अर्जुन वृक्ष की जैविक वानिकी विशेषताएँ एवं पुनरुत्पादन विधियाँ

विजय बगारे - मंगलायतन विश्वविद्यालय, जबलपुर
अतुल सिंह - जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर
एन. आर. रंगारे - मंगलायतन विश्वविद्यालय, जबलपुर

वानस्पतिक नाम : टर्मिनेलिया अर्जुना (*Terminalia arjuna*)
कुल : कॉम्ब्रेटेसी (Combretaceae)
प्रचलित नाम : अर्जुना, अर्जुन, कोहा

सामान्य परिचय

यह एक बड़ा सदाबहार वृक्ष है इसका छत्र फैला हुआ और शाखायें झुकी हुई होती हैं। तना लम्बा और सीधा विरले ही पाया जाता है, इसकी ऊँचाई 24 मी. और गोलाई 3 मी. तक पायी जाती है टर्मिनेलिया टोमेनटोसा से अलग इसकी पहचान इन प्रभेदों के आधार पर सरलता से की जा सकती है जैसे इसकी छाल चिकनी, फल कोणीय तथा पत्तियाँ संकरी होती है। फूल हल्के पीले रंग के छोटी-छोटी मंजरियों में लगते है। फल 5 कठोर पंख वाले, 2.5 से 5 से.मी. व्यास के तथा तन्तुमय काष्ठीय होते है। महाभारत के महान योद्धा अर्जुन के नाम पर इस वृक्ष का नाम अर्जुना या अर्जुन रखा गया है।

वितरण

भारतीय प्रायद्वीप के बड़े भू-भाग में अर्जुन का वृक्ष पाया जाता है यह नदियों के किनारे, घाटियों सूखे मैदानी क्षेत्र में पाया जाता है जलोढ़ दुम्मट उपजाऊ भूमि पर यह अधिक लम्बाई प्राप्त करता है। यह सामान्यतः छोटा नागपुर, मध्य भारत और बाम्बे तथा मद्रास प्रान्त में एवं दक्षिण से श्रीलंका तक पाया जाता है । यह नदियों एवं नलों के किनारे, म.प्र. के सभी जिलों में पाया जाता है।

जलवायु

अर्जुन मुख्यतः आद्रता, ठंडे स्थान प्रायः नदियों के किनारे या घाटियाँ या शुष्क क्षेत्रों में पाया जाता है। इसके प्राकृतिक वास स्थल पर तापमान 38°C से 48°C के मध्य होता है तथा न्यूनतम

ISSN: 3049-2211

तापमान - 1°C से 15°C के मध्य होता है और वर्षा सामान्यतः 750 से 1750 मिमी. होती है। यह पश्चिमी तट पर 3800 मिमी. वर्षा क्षेत्र में भी फलता फूलता रहता है।

मृदा- इसके लिये ढीली, आद्रता युक्त, उपजाऊ, जलोढ़ दुम्मट मृदा उपयोगी होती है।

ऋतु जैविकी

ग्रीष्म ऋतु की शुरूआत में इसमें नयी पत्तियाँ, पुरानी पत्तियों के गिर जाने के उपरान्त आती हैं। छोटे सफेद पुष्पों की शूकिका (नोंक) अप्रैल से जुलाई के मध्य आना प्रारम्भ होती है और फल अप्रैल से मई के मध्य पक जाता है, प्रत्येक तीसरे वर्ष उत्तम बीज वर्ष रहता है। बीज अंकुरण क्षमता 50-60 प्रतिशत के मध्य होती है बीजों के संग्रहण के लिये अप्रैल-मई का समय अच्छा रहता है।

वनवर्धनिक लक्षण

अल्प छायादार स्थानों पर यह वृक्ष अच्छी वृद्धि करता है इसके विकास हेतु अधिक छाया वाले स्थान उपयुक्त नहीं है इसका जडतंत्र सतही होता है ,जो कि नदियों के किनारों पर अपना वास स्थान आसानी से बना लेता है। नवोदभिद पौधे शुष्क वातावरण के प्रति वेहद संवेदी होते है लम्बे शुष्क मौसम में पौधे यहां तक कि बडे वृक्ष भी मृत हो जाते हैं।

प्राकृतिक पुनरूत्पादन

जिन वन क्षेत्रों में वृक्ष का बीज नदियों के किनारे एकत्रित हो जाता है वहां पर प्राकृतिक पुनरूत्पादन अच्छा होता है। यदि बीज सूर्य की रोशनी के सीधे सम्पर्क में आ जाता है तो अंकुरण नहीं होता है। अनुकूल परिस्थितियों में पौध की वृद्धि तेजी से होती है और पौध एक वर्ष में ही 45 से.मी. की ऊंचाई प्राप्त कर लेती हैं अंकुरण के कुछ माह के भीतर ही पौधे की जड़ लगभग 60 से.मी. लम्बाई तक विकसित हो जाती है। प्राकृतिक पौधे जंगल में 6-7 वर्ष में झाड़ी के रूप में विकसित हो जाते हैं। इसका जड़ तंत्र मजबूत होता है और प्ररोह भी अच्छा विकसित हो जाता है। लगातार पानी देने और ढीली मृदा में वृक्ष की वृद्धि अच्छी होती है। वृक्ष की मजबूत शाखायें तथा चौड़ा छत्र विकसित होता है पौधे की वृद्धि तेजी से होती है।

कृत्रिम पुनरूत्पादन

सीधी बुवाई या नर्सरी में तैयार पौध के रोपण या ठूंठ और गूटी बाँधना (Air layering) विधि के द्वारा अर्जुन का कायिक (Vegetative propagation) प्रवर्धन किया जा सकता है।

बीज एकत्रीकरण एवं संग्रहण

वृक्ष में 6-7 वर्ष की आयु में फल आने लगते है और प्रत्येक तीसरे वर्ष में बीज अच्छी मात्रा में आते हैं फल अप्रैल-मई में पक जाता है फल को वृक्ष से तोड़ कर एकत्र कर लेते हैं या पूर्व से साफ की गई जमीन पर गिरे पके फलों को एकत्र कर लिया जाता है फलों को सूर्य की रोशनी में सुखा कर वर्ष भर के लिये डिब्बों में बंद कर के रख लिया जाता है। लेकिन इन्हें एकत्र किये वर्ष में ही बोना उत्तम होता है।

बीज के वजन में भिन्नता पायी जाती है जो कि एकत्र किये गये स्त्रोत एवं समय के कारण होती है। लगभग 175 से 450 फलों का वजन

एक कि.ग्रा. होता है अनुपचारित बीजों में अंकुरण 15 से 20 दिनों में शुरू हो जाता है और 7 से 8 सप्ताह में पूर्ण हो जाता है अनुपचारित बीजों का अंकुरण प्रतिशत 50-60 होता है जबकि एक बार गर्म पानी से उपचारित किये बीजों का प्रतिशत लगभग 90 होता है। बीज के वजन और अंकुरण में सीधा सम्बन्ध होता है वजनदार बीज का अंकुरण अधिक होता है क्योंकि इसमें भ्रूण वृद्धि के लिये अधिक भोजन आरक्षित होता है। खुले और बंद डिब्बों में रखे बीजों में से जो बीज ऊपरी तथा नीचे की परत में होते है उन के अंकुरण की तुलना में जो बीज मध्य परत में होते है उनका अंकुरण अधिक अच्छा होता है।

बीज उपचार

अनुपचारित बीज से अनियमित अंकुरण होता है और यह लगभग 2 माह तक हो सकता है। यदि बीज को गर्म पानी में लगभग 3 से 4 दिनों के लिए रखा जाये तो लगभग 8 दिनों 90 प्रतिशत अंकुरण प्राप्त हो सकता है। गाये के गोबर के घोल में बीज को उपचारित कर शीघ्र बोने से अंकुरण अच्छा होता है।

रोपणी तकनीक

पूर्व उपचारित बीजों को छायादार स्थान पर गीले टाट के बोरों से ढँक कर रखा जाता है। अप्रैल-मई में पूर्व अंकुरित बीजों को पोलीथीन बेग में लगाया जाता है 30 से.मी. की ड्रिल कर के 5 से.मी. की दूरी पर फलों को गड़ाया जाता है। उपचारित बीज 8 से 10 दिन में अंकुरित हो जाते है नर्सरी की क्यारियों में लगातार पानी की सिंचाई की जाती है और जब आवश्यकता हो खरपतवार को उखाड़कर अलग किया जाता है पौध में जब पत्तियों का जोड़ा निकल आता है तब पौध दृढ़ हो जाती है। पौध का तीन माह तक नर्सरी में रख रखाव किया जाता है उसके बाद पौध रोपण के लिये तैयार हो जाती है अधिक पुराने पौधे को उनकी लम्बी जड़ों के कारण संभालना बडा कठिन होता है।

रोपण तकनीक

2-3 माह की जमीन में लगी पौध या कन्टेनर में लगे पौधों को वर्षा के पूर्व रोपण स्थल पर 3 मी. ग् 3 मी. की दूरी पर 30 से.मी.3 या 45 से.मी.3 के गड्डों में लगाया जाता है। 2-3 माह की नर्सरी की पौध जिनकी 12.5 से.मी. और 30 से.मी. क्रमशः औसत लम्बाई के तने एवं जड़ हो उन्हे रोपण क्षेत्र में रोपित किया जाता है जिससे अच्छे परिणाम प्राप्त होते है।

ठूँठ रोपण

इस प्रजाति को शाखा की कटिंग द्वारा भी प्रवर्धन किया जा सकता है। ठूँठ रोपण अच्छे परिणाम देता है इसके लिये 1.2 से 2.5 से.मी. व्यास के ठूँठ जुलाई में रोपित करना उचित होता है ठूँठ तैयार करने हेतु सामान्यतः 15 माह पुराने पौधों को उपयोग में लिया जाता है। इन्हें भी उसी प्रकार लगाया जाता है। जिस प्रकार मिट्टी लगे हुये पौधों को रोपित किया जाता है। एक वर्ष पुराने मिट्टी में लगे हुये पौधों को सड़क किनारे लगाने के लिये उपयुक्त पाया गया है। 1.8 मी. की आन्तरिक और 3.6 मी. बाहरी व्यास की खंती प्रत्येक गड्ढे के चारों ओर सुरक्षा की दृष्टि से खोदी जाती है पानी भराव वाले क्षेत्रों में गड्ढों की बजाय टीलों पर रोपण किया जाता है यह प्रजाति अकेले या कृषि फसल के साथ सिंचित या असिंचित भूमि पर पंक्ति में लगाकर सफलता पूर्वक ऊगायी जा सकती है सिंचाई वाले क्षेत्र में सीधी बुवाई हेतु फल जून-जूलाई में पक्तियों 3.5-4 मी. में पृथक से बोये जाते हैं।

गूटी बांधना

इस प्रजाति में गूटी बांधने की विधि द्वारा कायिक प्रवर्धन बहुत सफल पाया गया है। इस में मदर प्लांट पर 15 या 45 दिन पुरानी लगाई गई जंड़ों की लेयर की तुलना में 30 दिन अवधि की जड़ें ज्यादा असरदार होती है।

उपयोग

इसकी लकड़ी का उपयोग गाड़ी, कृषि उपकरण, वोट, खदानों से संबंधी समान बनाने में ,भवन निर्माण के सामान्य ढ़ाचे, जल रोकने, चप्पू, खम्भा और संचारण खम्बे बनाने में किया जा सकता है। यह द्वितीय श्रेणी का प्लायवुड और चाय के डिब्बे बनाने के लिये भी उपयुक्त है। कास्टिक सोड़ा और मशीनी विधि से गूदा निकालने पर सलई की तुलना में अर्जुन का गूदा अधिक अच्छा पाया गया है।

पूर्व में म.प्र. में अर्जुन की छाल का उपयोग चर्मशोधन कार्य में धवा (Anogeissus latifolia) या आँवला (Emblica officinalis) के साथ मिश्रित कर किया जाता था। इसकी छाल कड़बी, कसैली, शक्ति वर्धक, ज्वरनाशी और पेचिश रोधी गुणों से युक्त है। हड्डी टूटने और भीतरी चोट में छाल का पावडर दूध के साथ लेते है। उच्च रक्त चाप की शिकायत होने पर भी इसका पावडर फायदेमंद होता है। यह यकृत के सूत्रणरोग (Cirrhosis) को दूर करने में प्रभावी है तथा मूत्रवर्धक है। फोड़ा होने पर इसके काढ़े से साफ करने से फायदा होता है।

******

आँवला वृक्ष की पारिस्थितिकी, नर्सरी तकनीक एवं उपयोगिता पर अध्ययन

विजय बगारे - मंगलायतन विश्वविद्यालय, जबलपुर
अतुल सिंह - जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर
एन. आर. रंगारे - मंगलायतन विश्वविद्यालय, जबलपुर

वानस्पतिक नाम : एम्बलिका आफिसिनेलिस
कुल : युफोरबिएसी
प्रचलित नाम : आंवला

सामान्य परिचय

आंवला एक मध्यम आकार का एक महत्वपूर्ण फलदार औषधीय पर्णपाति प्रजाति है, जो कि सम्पूर्ण भारत में हर प्रकार के वनों में पायी जाती है। म0प्र0 में आंवला, साल, सागौन तथा मिश्रित वनों में वितरित एक आवश्यक प्रजाति है। आंवला के फल का आचार, जेली, मुरब्बा तथा आयुर्वेदिक दवाइयों में विशेष महत्व है। यह मध्यम आकार का पर्णपाती वृक्ष है। इसकी औसतन ऊँचाई 18 मी. और गोलाई 2.1 मी. तक होती है। इसकी छाल चिकनी हरे धूसर रंग की होती हैं, इसकी पत्तिया छोटी 7 से 2.5 मि.मी. लम्बी और 2 से 4 मि.मी. चौड़ी हल्के हरे रंग की होती है। फूल छोटे हरे पीले रंग के गुच्छो में आते हैं और इसका फल गोल (globose) होता है।

वितरण

इसका वितरण मिश्रित पर्णपाति वनों में 4500 फीट की ऊँचाई तक होता है। अविभाजित मध्य प्रदेश में पन्ना, छतरपुर, बैतूल, सिवनी, बालाघाट, मंडला, सागर, रायपुर, बिलासपुर, शिवपुरी में मुख्य रूप से मिश्रित वनों में अधिक पाया जाता है।

जलवायु

यह प्रजाति 900 मि0मी0 से 1600 मि0मी0 तक वर्षा वाले क्षेत्र में अधिक होती है। इस प्रजाति के लिए अधिकतम तापमान 49°C एवं न्यूनतम तापमान 0°Cआवश्यक है।

मृदा

भूमि उचित जल निकासी वाली बालुई, दोमट, से मटियार दोमट से मटियार दोमट मिट्टी होनी चाहिए। पी0 एच0 5.5 से 8.5 अम्लीय से क्षारीय भूमि में रोपण किया जा सकता है। इसकी बढ़त रेतीली दोमट मिट्टी में अच्छी होती है।

ऋतु जैविकी

आंवला एक पर्णपाती वृक्ष है जो कि अप्रैल माह में पर्णरहित रहता है। पत्ती गिरने की प्रक्रिया दिसम्बर से प्रारम्भ होकर माह अप्रैल में पूर्ण हो जाती है। अप्रैल में नई पत्तियाँ निकलने की प्रक्रिया दिसम्बर से प्रारंभ हो जाती है। नई पत्तियाँ आने के कुछ समय बाद पुष्पकलिकाओं का निर्माण होने लगता है। तथा माह मई तक पूर्ण हो जाता है। आंवला का फल अक्टूबर-नवम्बर के माह में पूर्ण आकार प्राप्त कर लेता है तथा जनवरी-फरवरी माह में पक जाता है। आंवले का फल गुच्छे की शक्ल में डालियों पर आ जाते है। फलों में पीली हरी चमक आने पर फलों को तोड़ना चाहिए, फल जमीन पर गिरने पर औषधीय उपयोग हेतु उपयुक्त नहीं रह जाते है।

वनवर्धनिक लक्षण

यह एक प्रकाशार्थी वृक्ष है जोकि पाला या बहुत अधिक सूखे के प्रति बहुत अधिक संवेदनशील होता है। पौधे में स्थूण प्ररोह की प्राप्ति अच्छी होती है। परंतु पोलार्ड करने पर संवेदनशीन होता है। स्थूण प्ररोह बहुत तेजी से बढ़ता है।

कृत्रिम पुनरूत्पादन

बीज एकत्रिकरण एवं संग्रहण

इसका पुष्पन माह मार्च, मई में एवं फलन नवम्बर माह में होता है। अच्छे बीज की प्राप्ति के लिए आंवला का फल माह जनवरी-फरवरी में वृक्ष से तोड़ा जाना चाहिए। उस समय फलों से प्राप्त बीज का रंग काला-भूरा होता है। हल्के पीले, भूरे रंग का बीज अपरिपक्व होता है। फलों को तोड़कर 20-25 दिनों तक धूप में सुखाने पर लकड़ी के हैंडिल से हल्के तौर पर पीटने से बीज प्राप्त होते हैं। प्रत्येक फल से औसत 5 बीज प्राप्त होते हैं। पन्ना के आंवले का विशेष महत्व है क्योंकि पन्ना के आंवले का आकार बड़ा होता है तथा उसमें रेशे भी नहीं पाए जाते हैं। पन्ना का आंवला मुरब्बे के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। फल का उत्पादन वृक्षारोपण के 4 वर्ष में प्रारंभ हो जाता है। एक किलोग्राम में औसतन आंवले के 45-50 फल आते हैं तथा 200 कि.ग्रा. आंवला फल से 1 कि.ग्रा. आंवला बीज प्राप्त होता है। प्रति कि.ग्रा. वजन में बीजों की

मात्रा 4200-4500 तक होती है। आंवले के बीज का अंकुरण एक वर्ष तक 50 से 70 प्रतिशत रहता है जो कि एक वर्ष बाद घटता जाता है। आंवले के बीज को ठण्डे पानी में 24 घण्टे तक भिगोकर पानी में उतराने वाले बीजों को अलग कर पानी में डूबने वाले बीजों को ही बोने हेतु उपयोग करना चाहिए।

रोपणी तकनीक

क्यारी की तैयारी हेतु दोमट मिट्टी अच्छी होती है। इसमें 10 मी. ×1 मी. नाप की क्यारी (जो सतह से 10-15 से.मी. ऊंची हो) 20-25 किलोग्राम गोबर की पूर्णतः सड़ी खाद मिलाकर बनाना चाहिए। इसमें बीज दो विधियों से बोया जा सकता है:

1. क्यारी में 10 से.मी. के अंतर से 2-3 से.मी. गहराई में 2-3 से.मी. की दूरी से बीज बोना चाहिए।
2. छिड़काव पद्धति में बीजों को इस प्रकार छिड़कना चाहिए कि बीज की बीज से दूरी 5 से.मी. हो। इसे अच्छे तरह से ढकने हेतु बीज पर छनी हुई मिट्टी डालना चाहिए। क्यारी में इतना पानी डालना चाहिए कि क्यारी में पानी का भराव न हो। अधिक पानी से अंकुरित पौधों की जड़ें गल जाती हैं। ऐसी परिस्थिति में पानी का नियंत्रण करना चाहिए तथा एक लीटर पानी में 2 ग्राम बैविस्टीन का घोल बनाकर प्रति बेड में 4-5 लीटर घोल का छिड़काव करना चाहिए।

अंकुरण के पश्चात पत्ती आने पर पौधों को सावधानी पूर्वक पॉलीथिन बेगध्रूटट्रेनर में लगाना चाहिए तथा सिंचाई एवं खरपतवार निकालने का कार्य आवश्यकतानुसार करते रहना चाहिए। एक वर्ष पुराने पॉलीथिन बैग में लगे पौधे या रूटट्रेनर में 3-6 माह पुराने पौधे वृक्षारोपण हेतु उचित होते हैं।

रोपण तकनीक

रोपण का समय जुलाई तथा पानी की सुविधा होने पर फरवरी से मार्च तक होता है।

पौधे लगाने की दूरी

1. वन क्षेत्र में 4 ×4 मी.।
2. पड़त भूमि में 8 × 8 मी.।
3. गड्ढे का आकार:
   - उपजाऊ मिट्टी में 30 × 30 × 30 से.मी. ।
   - पड़त भूमि में 50 × 50 × 50 से.मी. ।

गड्ढे खोदते समय ऊपर एक फुट की मिट्टी को अलग रखकर, शेष मिट्टी से पत्थर, कंकड़ अलग कर गोबर खाद एव बी.एच.सी. मिलाकर गड्ढे में भरना चाहिए।

एक वर्ष के आंवले के पौधे में 10 कि.ग्रा. गोबर खाद, 100 ग्राम नाइट्रोजन, 50 ग्राम फास्फोरस तथा 75-100 ग्राम पोटेशियम डालना चाहिए। यही मात्रा हर वर्ष इसी अनुपात में बढ़ाते हुए 10 वर्ष तक डालना चाहिए। गोबर खाद पौधे में जनवरी माह में, नाइट्रोजन, पोटाश की आधी मात्रा तथा फास्फोरस की पूरी मात्रा जनवरी अथवा फरवरी में पुष्पन होने के पूर्व डाली जाना चाहिए। बाकी आधी पोटाश पौधे में अगस्त माह के अंत में डाला जाना चाहिए।

आंवला का पौधा दलदल एवं पानी का भराव सह नहीं पाता। अतः अधिक वर्षा में इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए। आंवले के रोपण क्षेत्र में केवल खाद एवं उर्वरक डालने के पश्चात ही सिंचाई की आवश्यकता होती है। पौधे में पुष्पन के समय सिंचाई नहीं की जानी चाहिए, परन्तु फल आने के बाद सिंचाई की जा सकती है। इस प्रकार सर्दी में फल आने के पश्चात एक तथा गर्मी में तीन माह तक माह में तीन बार की दर से सिंचाई की जानी चाहिए। कम से कम दो बार गुड़ाई, निंदाई जुलाई-अगस्त तथा जनवरी-फरवरी में कराना चाहिए।

उपयोग

आंवला का फल कब्ज, कुष्ठरोग, शारीरिक कमजोरी, काली खांसी, गंजापन, गठिया, टीबी., जुकाम, बवासीर, मधुमेह, मिर्गी आदि में उपयोग किया जाता है। आंवला, रीठा, शिकाकाई का पाउडर बनाकर इसके पानी से बाल काले, लंबे, घने तथा चमकदार होते हैं। आंवला फल विटामिन सी से भरपूर होता है आंवले से तैयार किया जाने वाला त्रिफला चूर्ण आँखों एवं पेट की बिमारी के लिए रामवाण है तथा इससे निर्मात च्यवनप्राश शारीरिक वृद्धि तथा स्वास्थ के लिए एक उपयोगी टॉनिक है। आंवले के गूदे के सेवन करने पर कोलेस्ट्राल का स्तर 67.5 प्रतिशत तथा निम्न घनत्व लियोप्रोटीन (एल.डी.एल.) का स्तर 75.3 प्रतिशत तक कम होना पाया गया है। जिससे हृदयाघात की आशंका नहीं होती।

****

करंज (*Pongamia pinnata*)
एक बहुउपयोगी नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाला वृक्ष

विजय बगारे - मंगलायतन विश्वविद्यालय, जबलपुर
अतुल सिंह - जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर
एन. आर. रंगारे - मंगलायतन विश्वविद्यालय, जबलपुर

वानस्पतिक नाम : **पोंगामिया पिन्नेटा (*Pongamia pinnata*)**
कुल : **लेग्यूमिनोसी (Leguminosae)**
प्रचलित नाम : **करंज, करजी, कंजी**

सामान्य परिचय

करंज लेग्यूमिनोसी कुल का एक बहुउपयोगी वृक्ष है। करंज के वृक्ष प्राकृतिक रूप से अपेक्षाकृत अधिक नमी वाले स्थानों पर पाये जाते हैं। यह वृक्ष भारत के प्रायः सभी मैदानी भागों में पाया जाता है। यह एक सहनशील प्रजाति है। यह वृक्ष नमी तथा तापक्रम के बड़े विस्तार में बढ़ता एवं फलता फूलता है। विपरीत परिस्थितियों में भी करंज का पौधा जीवित रहता है एवं वृद्धि प्राप्त करता है। इन कारणों से रोपण कार्यक्रमों में इसका बड़ा महत्व है। खासतौर पर पड़ती भूमि के वनीकरण हेतु यह एक उपयुक्त प्रजाति है। यह मध्यम आकार एवं कम गोलाई अर्थात अधिकतम ऊँचाई 18 मी. एवं गोलाई 1.5 मी. तक होती हैं। इस वृक्ष की छाल गहरे स्लेटी रंग की एवं पत्तीयाँ चमकदार होती है। इसके फूल सफेद गूलाबी रंग के होते है।

वितरण

यह वृक्ष सामान्य रूप से सम्पूर्ण भारत व मध्यप्रदेश के सभी जिलों में पाया जाता है। यह मुख्यतः नदियों के किनारे ज्यादा पाया जाता है।

जलवायु

उपयुक्त तापमान 10ब् से 380ब् एवं उपयुक्त वर्षा 500 मि.मी. से 2500 मि.मी. औसत वर्षा वाले क्षेत्रों में पाया जाता है।

मृदा

यह वृक्ष विविध भौमिकी में वृद्धि करने में समक्ष है। जैसे ग्रेनाइट, नीज, स्तारित चट्टान, क्वार्टइज, ट्रेप एवं लेटराईट भूमि में भी वृद्धि करता है। यह वृक्ष ऊसर एवं क्षारीय मृदा के प्रति सहनशील

ISSN: 3049-2211

छाल

पत्ती

फूल

फल

बीज

होता है। किन्तु वृक्ष की अच्छी वृद्धि के लिए क्ले दोमट मृदा अधिक उपयुक्त होती है। यह रेतीली एवं काली मिट्टी में भी पनपता है।

ऋतु जैविकी

यह पर्णपाती प्रकार का वृक्ष है। यह मध्यम आकार का वृक्ष होता है जिसकी शाखाएँ चिकनी नीचे की ओर लठकती हुई घने छत्र वाली होती है फूल गुलाबी आसमानी रंग लिये हुये गुच्छो में आते है। पतझड़ का समय नवम्बर से जनवरी तक आता हैै। वृक्ष में पुष्पन जनवरी से मार्च माह में दिखाई देते है एवं अप्रैल से जून तक फल लगते है। प्रत्येक फल में एक से दो बीज होते है।

वनवर्धनिक लक्षण

यह अत्यंत धीमी गति से बढ़ने वाला सूखा प्रतिरोधी वृक्ष है। यह प्रकाशपेक्षी (light demander) प्रजाति है।

प्राकृतिक पुनरूत्पादन

इस वृक्ष में प्रतिवर्ष फलन होता है। बहुत मात्रा में फल देता है बीज का प्राकृतिक रूप से अंकुरण अच्छा होता है।

कृत्रिम पुनरूत्पादन

बीज का संग्रहण:

बीज का संग्रहण करने के पूर्व अच्छे वृक्षों का चयन कर लेना चाहिये। बीज संग्रहण के समय यह भी देखा जाना चाहिये कि केवल पूर्णतः पके हुये एवं निरोग फल ही संग्रहित किये जावें। सामान्यतः करंज की फलियां फरवरी से अप्रैल के दौरान पकती हैं। अतः अप्रैल मई के माह में बीजों का संग्रहण किया जाना चाहिये।

बीज भंडारण:

करंज के बीजों को डिब्बों या पोलीथीन बैग में 6 माह से 1 वर्ष तक रखा जा सकता है क्योंकि इसकी जीवन क्षमता अधिक दिनों तक होती है। डिब्बों में बंद करने के पहले बीज में फफूंदनाशक तथा कीटनाशक दवा मिलाई जाना चाहिए। तेलीय प्रजाति का बीज होने के कारण एक वर्ष के पश्चात् बीज की अंकुरण क्षमता समाप्त या बहुत कम हो जाती है। अतः करंज का बीज एक वर्ष से अधिक समय तक भण्डारित नहीं किया जाना चाहिये।

अप्रैल से जून में फल पूर्ण रूप से परिपक्व होता है। पके हुई फलियों को एकत्रित कर धूप में सुखाकर लकड़ी से पीठ कर बीज अलग कर लिये जाते है। 1 किलोग्राम बीज में 800 से 1500 तक बीज आते है। बीजों की अंकुरण क्षमता 75 से 80 प्रतिशत तक नये बीजों में होता है।

रोपणी तकनीक

मई माह में बीजो को उपचारित कर बीजों को बुआई से पूर्व ठंडे पानी में 24 घण्टे तक डुबों कर रखना चाहिए एवं पॉलीथीन बैग के लिए अच्छी तरह से 1:1:1 की मात्रा में मिट्टी, रेत एवं सड़ी हुई गोबर की खाद मिला कर पॉलीथीन बैग भर कर सीधे बुआई की जाती है या क्यारियों में लाइन से लाइन की दूरी 15 से.मी. एवं बीज से बीज की दूरी 10 से.मी. दूरी पर बुआई कर दी जाती है। बीजों की बुआई मई माह में करना आवश्यक माना जाता हैं। अंकुरण 10 दिन बाद शुरू हो जाता है एवं लगभग 1 माह में पूर्ण हो जाता है। दूसरे वर्ष की वर्षा ऋतु तक पौधे तैयार हो जाते है। इसके बाद पौधों का प्रतिरोपण कर सकते है

रोपण तकनीक

रोपण हेतु 45 बउ ग 45 बउ ग 45 बउ आकार के गड्ढे अप्रैल माह में खोदकर छोड़ दिये जाना चाहिये। जून के अंतिम सप्ताह या जुलाई के प्रथम सप्ताह में पौधों को रोपित किया जाना चाहिये। रोपित करने के पूर्व इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि पोलीथीन निकाल दी गई हो।

अंतराल 3 मी. × 3 मी. रखा जाता है किन्तु औद्योगिक उपयोगिता को देखते हुये रोपण अंतराल 4 मी. ग 4 मी. रखा जा सकता प्रति गड्ढे में 1 किलो गोबर खाद एवं 100 ग्राम नीम की खली को नाइट्रोजन के स्त्रोत एवं कीटनाशक के रूप में प्रयोग किया जाना चाहिये। पौधे को फंगस रोग से बचाने के लिये कवकनाशी जैसे 0.05 प्रतिशत सान्द्रता के बेवस्टीन का प्रयोग किया जाता है। रोपण के पश्चात् लगातार एक दिन के अंतराल पर, उसके पश्चात् 15 दिन के अंतराल पर चार बार, फिर 3 माह के अंतराल पर एक वर्ष तक सिंचाई करना अनिवार्य होता है। इसके बाद बारिश का पानी आगे की बढ़त के लिये पर्याप्त होता है। आरंभ के 2-3 वर्षों तक छोटे पौधों के आस-पास निंदाई आवश्यक है। सड़क के किनारे लगाने पर अच्छा आकार लाने के लिए शुरू में शाखाओं को काट देना चाहिए।

उपयोग

इसके तेल का उपयोग दवाइयां एवं साबुन बनाने में किया जाता है। करंज की खली एक अच्छी खाद होती है। करंज के तेल का उपयोग कान के दर्द, सीने का दर्द, फोड़ा फुन्सी एवं स्कर्वी की दवा तैयार करने में किया जाता है। पत्तियों का उपयोग हरी खाद के रूप में किया जाता है। ताजी छाल का उपयोग आंतरिक खूनी बवासीर, घाव की सफाई, कीड़े मकोड़ों को नष्ट करने के लिए किया जाता है। तने की दातून दंत रोगी के लिए रामबाण का कार्य करती है। करंज के बीजों की माला तैयार कर आदिवासी अंचलों में बच्चों की कुकरखांसी से बचने के लिए पहनायी जाती है।

****

मेलाइना आरबोरिया (*Gmelina arborea*) का वानिकी महत्व

विजय बगारे - मंगलायतन विश्वविद्यालय, जबलपुर
अतुल सिंह - जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर
एन. आर. रंगारे - मंगलायतन विश्वविद्यालय, जबलपुर

वानस्पतिक नाम : मेलाइना आरबोरिया (*Gmelina arborea*)
कुल : वर्बिनेसी (Verbenaceae)
प्रचलित नाम : खमेर गम्हार, कुम्भारी, सीवन

सामान्य परिचय

खमैर एक पर्णपाती वृक्ष है जो प्राकृतिक रूप से भारतीय उपमहाद्विप के प्रायद्विपीय भाग में 1500 मी. की ऊचाई तक पाया जाता हे प्राकृतिक वन क्षेत्रों में यह बिखरे हुए रूप में पाया जाता है। दक्षिणी एशीया के कुछ देशों, यथा, कम्बोडिया, लाओस, थाइलैण्ड वियतनाम और चीन के दक्षिणी प्रांतों में भी मिलता है।

खमैर को सजावटी तौर पर उद्यानों एवं राजमार्गो के किनारों एवं कृषि भूमि पर लगाया जाता है यह एक तेजी से बढने वाला वृक्ष है जिसका वितान बहुत अच्छा होता है। यह स्थानीय जलवायु एवं मृदा के अनुसार मध्यम से बड़े आकार का वृक्ष होता है एवं इसका छत्र भी फैला हुआ होता है। यह 10 - 15 मी . ऊँचा वृक्ष होता है । इसकी छाल श्वेत तथा ताजी छाल कुछ पीलापन युक्त हरियाली लिए , श्वेत - भूरे रंग की होती है।

छाल पर काले चिन्ह या छोटे - छोटे गोल दाने होते हैं। पत्तियाँ सरल , विपरित 6 - 20 ×5 - 15 से. मी. अण्डाकार या अभिअण्डाकार, हृदयाकार, नुकीली, 5 - 15 से. मी. लम्बे वृन्त वाली तथा निचले सतह पर रोमश होती हैं जिनके आधार भाग मे

ISSN: 3049-2211

2 ग्रंन्थि होती है। फूल 8 - 15 से. मी. लम्बी मंजरियों में, पीतवर्ण के आते हैं जिन पर भूरे रंग के छींटे रहते हैं। पुंकेसर 4 (दो छोटे, दो बड़े) तथा अण्डप 4 खण्डों वाली होती है। फल बहेड़े के समान पर कुछ लम्बाई लिये अण्डाकार और पकने पर पीले रंग के हो जाते हैं।

वितरण

यह स्थानीय जलवायु एवं मृदा के अनुसार मध्यम से बड़े आकार का वृक्ष होता है एवं इसका छत्र भी फैला हुआ होता है। अरूणाचल एवं असम जैसे पूर्वि हिमालयी क्षेत्रों में यह 30 मी. से भी अधिक ऊँचाई प्राप्त करता है। खासी, जेन्तिया, पहाड़ी क्षेत्रों में भी अधिक ऊँचाई प्रदर्शित करता है इसके तने का आदर्श व्यास 1.5-2 मीटर तक होता है। लेकिन वांछित उपयुक्त वातावरणीय दशाओं में यह 4.5 मी. की गोलाई भी प्राप्त कर लेता है। मध्यप्रदेश के शुष्क वनों में मण्डला और रायपुर के अतिरिक्त (को छोड़कर) इसके तने की गोलाई (व्यास) 0.9 मी. से अधिक नही पहुँच पाती है। साल एवं मिश्रित वनों में, होगशंगाबाद, हरदा, रीवा, सीधी, सतना, इंदौर, बालाघाट, मंडला, सिवनी, शिवपुरी, शहडोल एवं छत्तरपुर आदि में पाया जाता है।

जलवायु

वृक्ष के प्राकृतिक वास क्षेत्र में अधिकतम तापमान 30°C-47°C एवं न्यूनतम तापमान 02°C - 14°C आपेक्षिक आर्द्रता जुलाई माह में 60-100% एवं जनवरी माह में 40 -100% होती है। वार्षिक वर्षा 750-4500 मी.मी.है। जो अधिकांशतः मई से सितम्बर में होती है।

मृदा

इसके लिये नम उपजाऊ घाटियों में जहाँ रेतीली मिट्टी होती है वहाँ इसकी बढत अच्छी होती है। नदियों द्वारा बाढ में बहाकर लाई हुई मृदा भी इसके लिए उपयुक्त है। यह जल भराव या खराब जल निकासी क्षेत्रों में मर जाता है। सूखी रेतीली तथा खराब मिट्टी में इसकी बढत रुक जाती है और यह झाड़ीनुमा आकार का हो जाता है।

ऋतु जैविकी

विकसित वृक्ष की तरह ही नन्हें पौधों की पत्तियाँ भी फरवरी से अप्रैल के मध्य झड़ जाती हैं नई पत्तियाँ अप्रैल से मई में आना प्रारंभ होती है, और मई के बाद अगले सीजन की बढत शुरू हो जाती हैं दूसरे वर्ष से शाखाँए भी बननी शुरू हो जाती है।

इसके पत्ते जनवरी-फरवरी में गिर जाते हैं यह मार्च तक सामान्यतः पर्णहरित हो जाता है इसमें फूल फरवरी से अप्रैल के मध्य आते है जब वृक्ष अधिकांशतः पर्णरहित होता है अथवा उसमें कुछ नयो

छाल

पत्ती

फूल

फल

बीज

पत्ते आने शुरू हो जाते है 3-4 वर्ष की उम्र में फल आ जाते है। नये फल अप्रैल के अंत से जून-जुलाई तक पकते है तथा हर वर्ष आने वाले फलों की संख्या सर्वाधिक होती है।

वन प्रकार- बहुल्यता के आधार पर यह विभिन्न वन प्रजातियों के साथ मिश्रीत अवस्था में भिन्न-भिन्न प्रकार के वन प्रकारों मे मिलता है।

1. शुष्क सागौन वन - सागौन, सलई, धावड़ा के साथ
2. शुष्क मिश्रीत पर्णपाती वन - धावड़ा, कुल्फ आदि के साथ
3. शुष्क साल वन - साल धावड़ा आदि के साथ

वनवर्धनिक लक्षण

यह सुखा एवं पाले वाली दशाओं में भी वृद्धि कम हो जाती है। अंकुरण की अवस्था में इसे झिगुंर (टिड्डे) हानी पहुचाते है। सागौन की अपेक्षा यह अधिक छाया वाली दशाओं में वृद्धि कर सकता हे अधिक सूखे एवं रेतीली मृदा वाली दशाओं में यह मर जाता है या फिर झाड़ीनुमा आकार में परिवर्तित होकर ही जीवित रहता हे इसका कापीस बहुत अच्छा आता है। और कापीस शूट तेजी से बढता है। सामान्यतः चारा एवं अन्य घास - फूस की कमी होने पर हिरण एवं अन्य मवेशी इसके नवजात पौधों को बहुत नुकसान पहुचाते हैं जिससे इसके प्राकृतिक पुनुरूत्पादन को भी हानी पहुचती है।

प्राकृतिक पुनरूत्पादन

प्राकृतिक अवस्था में वृक्षों से बीज गिरने के पश्चात वर्षा के आरंभ मे होते है अंकुरण प्रारंभ हो जाता हे मवेशीयों द्वारा फल खा लेने के पश्चात जुगाली के दौरान बीज निकाल दिए जाते है जो बिजों को भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में फेलाने में सहायक होता हैं वर्षा में भी खमेर के फल का गूदा धुल जाता है और सड़ जाता है इसका गूदा कीडों द्वारा भी खा लिया जाता है एवं कीडों द्वारा खाये जाने के पश्चात इसका बीज बाहर आ जाता है। अंकुरण के लिए इसके बीज का जमीन में दबा हुआ होना जरूरी हे सामान्यतः जमीन पर पडें हुए बीजों में अंकुरण कम होता है तथा कभी-कभी तेज वर्षा में यह बीज या अंकुरीत बीज बह भी जाते है वनों में अधिकाशतः प्रकृतिक पुनरूत्पादन पर्याप्त नहीं होता है।

प्राकृतिक पुनरूत्पादन कम होने का मुख्य कारण इस प्रजाति का वनों में छुटपुट रूप से पाया जाना है। इसके बीज के कडे खोल को गलने-सडने में समय लगता हैं तथा अंकुरण अगले वर्षाकाल में ही हो पाता है। प्राकृतिक पुनुरूत्पादन को सफल बनाने के लिए वन क्षेत्र को चराई एवं आग से बचाना अत्यंत आवश्यक है।

कृत्रिम पुनरूत्पादन

खमेर की सीधे बोकर या प्रतिरोपण द्वारा कृत्रिम रूप से उगाया जा सकता है।

बीज एकत्रीकरण एवं संग्रहण

मई माह में इसके बीज जमीन से एकत्रित किए जाते है खमेर पर हर वर्ष फल आते है फल आकार में अण्डाकार एवं 20 से 25 से.मी. लम्बा और पकने पर पीला होता है। फल का गूदा मीठा होता है तथा जो की मई-जून के मध्य में पकते है तथा किन्ही विशेष जलवायु क्षेत्रों में अप्रैल से जून तक पकते है बीज की जीवन क्षमता अवधि सामान्यतः भण्डारण पर 9 से 12 माह तक होती है। एक प्राकृतिक पेड से लगभग 1 किलो ग्राम साफ फल प्राप्त हो सकते है। ताजे बीजों की अंकुरण क्षमता 75 से 90 प्रतिशत होती है। जो एक वर्ष के भंडारण के पश्चात 12 से 30 प्रतिशत रह जाती है।

भंडारण

सामान्यतः खमेंर के बीज की जीवन क्षमता बहुत जल्द ही क्षीण होती है इसे प्लास्टिक जार में सिलीका जैल रसायन के साथ मिश्रीत कर 1.5 वर्ष तक रखने पर 25 से 30 प्रतिशत अंकुरण प्राप्त होता है। इसके अलावा सूखे बीजों को गूदा निकालने के पश्चात अच्छे हवादार कमरों में रखना चाहिए।

सामान्यतः इसे उसी वर्ष बो दिया जाता है। यदि इसे अगले वर्ष बोना हो तो मार्च में इसके बीज बोने पर वर्षा आंरभ होने तक पौधे 30 से.मी. तक ऊँचे हो जाते है जो रोपण के लिए रूट-शूट बनाने के काम में आते है। सूखे बीजों को एक-दो दिन पानी में भिगों कर रखने पर अंकुरण तेज हो जाता है। इनके बीजों को एक वर्ष से अधिक भंडारण नही करना चाहिए क्योंकि इसके बाद बीजों की अंकुरण क्षमता अत्यत कम हो जाती है। ताजे बीजों की अंकुरण क्षमता 75 से 90 प्रतिशत होती है जो एक वर्ष के भंडारण के पश्चात 12 से 13 प्रतिशत रह जाती है। ताजे गूदा सहित बीज 970 प्रति कि.ग्रा. एवं सूखे गूदा रहित बीज 1400 प्रति कि.ग्रा. होते है।

बीज उपचार

धन वृक्ष या क्लोनल सीड आर्चड के बीज को एकत्र कर उन्हे सडने देना चाहिए या फिर इसके स्थान पर उन्हे मवेशीयों की खिला कर जुगाली से प्राप्त बीजों को इकठ्ठा कर उन्हें धो कर धूप में सुखाना चाहिए। इस प्रकार उपचारित बीजों का अंकुरण अधिक अच्छा होता है।

ISSN: 3049-2211

बुबाई पूर्व उपचारण

10 प्रतिशत सान्द्रता के सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ 10 मिनट तक डुबोकर रखने के पश्चात साफ पानी से धोकर बुआई करने पर 60 से 70 प्रतिशत तक (ताजे बीज में) अंकुरण प्राप्त होता है।

बुआई हेतु उपयुक्त माध्यम- अंकुरण हेतु बीज की बुआई के लिए प्रारंभिक अवस्था में बारिक रेत का प्रयोग करना चाहिए जिससे अधिक से अधिक अंकुरण प्राप्त किया जा सके।

बुआई का समय- बीज बुआई हेतु उपयुक्त समय जून माह का होता है क्योकि बीज की जीवन क्षमता काफी कम होती है इसलिए बीज एकत्रिकरण के तुरंत बाद बुआई करना आवश्यक होता है।

रोपणी तकनीक

स्थाई/अस्थाई रोपणी हेतु स्थल पर बारहमासी जल स्त्रोत होना चाहिये और यह समतल भूमि पर होनी चाहिये जहाँ मिट्टी में जल का शीघ्र निकास हो जाता है। पहाड़ी स्थलों पर कम देलवां जमीन उत्तरी आस्पेक्ट की ओर चुनना चाहिये।

रोपणी में खुली क्यारी में बीज 7.5 सेमी ग् 7.5 सेमी अंतराल पर 1.0 - 2.5 सेमी गहरे बोये जाते है। बीज 10 से 15 दिनों में अंकुरित हो जाते है। आवश्यकता अनुसार निंदाई, सिंचाई की जाती है इन पौधों को वर्षा के आरंभ में 15 सेमी ऊँचाई का होने पर रोपण किया जाता है। रोपण के दो माह पूर्व रोपण क्षेत्र में हल चला देना चाहिये। 6 इंच मिट्टी इसके द्वारा भुरभुरी कर देना चाहिये। बीजों को पोलीथिन थैलियों में बुवाई कर पौधे तैयार किये जा सकते हैं।

रोपण तकनीक

रोपण 2 × 2 मीटर के अन्तराल में , 30 × 30 × 30 से . मी , के गड्ढों में करना चाहिये । गड्ढों में 3.1 में मिट्टी और गोबर की खाद मिला देना चाहिये। रोपण के लिये 6 - 8 माह के उच्च गुणवत्ता के पौधे उपयोग करना चाहिये। रोपण प्रथम मानसून वर्षा के बाद करना चाहिये। यदि रोपण के उपरांत वर्षा न हो तो सप्ताह में दो बार आवश्यकतानुसार सिंचाई करना चाहिये। रूट शूट के रोपण की विधि सागौन प्रजाति के समान होती है।

अक्टूबर माह में सिंचाई प्रारंभ कर देना चाहिये। अक्टूबर से जनवरी तक सप्ताह में एक बार फरवरी से अप्रैल तक सप्ताह में दो बार और मई से वर्षात तक प्रत्येक दूसरे दिन सिंचाई करना चाहिये।

उपयोग

इसकी लकड़ी फर्नीचर एवं भवन निर्माण में उपयोग की जाती है इसके अलावा औषधि निर्माण, रेशम कीट पालन तथा मावेशियों के चारे के रूप में इसकी पत्तियाँ उपयोगी होती है। छाल एवं जडें पेट दर्द, जलन, बुखार, बबासीर आदि में उपयोगी ही फुल काष्ठ रोग एवं खून संबंधी बिमारियों में उपयोगी है फल विटामीन एवं मिनरल से भरपूर बात एवं रक्तहिनता आदि के उपचार में काम आता है।

****

पोषण संवेदी कृषि का सार्वजनिक स्वास्थ्य में कृषि विस्तार सेवाओं की भूमिका एवं उनका योगदान

अभिजीत कुडेरिया एवं चेतना पाठक
पीएच.डी. शोधार्थी
डॉ. सोनम अग्रवाल
सहायक प्राध्यापक
जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर

परिचय

कृषि और पोषण के बीच गहरा संबंध है। खेती का मुख्य उद्देश्य खाद्य का उत्पादन करना है, लेकिन यह केवल पेट भरने तक सीमित नहीं होना चाहिए। यह एक स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए जरूरी है कि खेती से प्राप्त खाद्य पदार्थ न केवल मात्रात्मक दृष्टि से बल्कि गुणात्मक दृष्टि से भी समृद्ध होना चाहिए। पोषण संवेदी कृषि (Nutrition Sensitive Agriculture) एक ऐसा दृष्टिकोण है, जिसमें कृषि उत्पादन को इस प्रकार आकार दिया जाना चाहिए कि वह लोगों की पोषण संबंधी आवश्यकताओं को पूरा कर सके। इस प्रक्रिया में कृषि विस्तार सेवाओं की भूमिका बेहद महत्वपूर्ण और अहम होती है, जो किसानों को सही जानकारी, तकनीक और संसाधनों के माध्यम से स्वास्थ्य और संतुलित उत्पादन के लिए प्रेरित करती है।

पोषण संवेदी कृषि क्या है?

पोषण संवेदी कृषि का मतलब है कि खेती की प्रक्रियाओं को इस प्रकार अनुकूलित किया जाए कि वे पोषण सुरक्षा को बढ़ावा दें। इसका उद्देश्य सिर्फ उत्पादन बढ़ाना नहीं है, बल्कि यह सुनिश्चित करना है कि उत्पादित खाद्य पदार्थ विटामिन, खनिज और अन्य पोषक तत्वों से भरपूर हों।

इसके प्रमुख लक्ष्य

पोषण से भरपूर फसलें: खेती में उन फसलों को प्राथमिकता देना, जिनमें विटामिन, प्रोटीन और खनिज जैसे पोषक तत्व अधिक हों, जैसे हरी पत्तेदार सब्जियाँ, दालें, और फल आदि।

पोषण विविधता: कृषि में विविधता लाकर विभिन्न प्रकार की फसलों, दलों तथा फलों का उत्पादन करना चाहिए ताकि लोगों को सभी आवश्यक पोषक तत्व मिल सकें।

जैविक खाद्य उत्पादन: रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग को कम करके जैविक खाद्य का उपयोग कर उत्पादन को बढ़ावा देना, और हानिकारक कीटनाशक तथा रसायन से मुक्त करना जिससे उत्पाद स्वास्थ्यवर्धक प्राप्त हो सकें।

मिट्टी और जल प्रबंधन: मिट्टी तथा जल संसाधनों का सही प्रबंधन करना जिससे फसलों की गुणवत्ता में सुधार हो सके।

कृषि विस्तार सेवाओं की भूमिका

कृषि विस्तार सेवाए किसानों और वैज्ञानिकों के बीच एक सेतु का काम करती हैं। ये सेवाए नई कृषि तकनीकों, प्रथाओं और जानकारी को किसानों तक पहुँचाने का काम करती हैं, जिससे खेती की गुणवत्ता और उत्पादकता में सुधार हो सके। पोषण संवेदी कृषि में भी कृषि विस्तार सेवाओं की भूमिका महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि वे किसानों को पोषण संबंधी जागरूकता प्रदान करते हैं और उन्हें इस बात के लिए प्रेरित करते हैं कि वे अपने कृषि उत्पादन को पोषण-संवर्धित बनाने के लिए क्या कर सकते हैं।

विस्तार सेवाओं के प्रमुख योगदान:

किसानों को पोषण संबंधी जानकारी देना: कृषि विस्तार सेवाए किसानों को यह सिखाती हैं कि कौन सी फसलें पोषण से भरपूर होती हैं और उन्हें कैसे उगाया जा सकता है। यह जानकारी उन्हें स्वस्थ खाद्य उत्पादन के लिए प्रेरित करती है।

उन्नत बीज और तकनीक प्रदान करना: पोषण संवेदी कृषि के लिए आवश्यक है कि किसानों को उन्नत बीज और तकनीक प्रदान कराई जाए। कृषि विस्तार सेवाएँ इन बीजों और तकनीकों के बारे में जानकारी देकर किसानों की मदद करती हैं।

खाद्य विविधता को बढ़ावा देना: किसानों को विभिन्न प्रकार की फसलें उगाने के लिए प्रेरित करना, ताकि उनकी फसलों में पोषण विविधता हो और स्थानीय समुदायों को पौष्टिक आहार मिल सके।

जैविक खेती को प्रोत्साहन: जैविक खेती की तकनीकों को बढ़ावा देकर कृषि विस्तार सेवाएँ किसानों को रसायनों के कम उपयोग के लिए प्रेरित करती हैं। जैविक उत्पादन न केवल पर्यावरण के लिए अच्छा है, बल्कि इससे प्राप्त होने वाले खाद्य पदार्थ पोषण से भरपूर और सुरक्षित होते हैं।

सार्वजनिक स्वास्थ्य में पोषण संवेदी कृषि का योगदान

पोषण संवेदी कृषि का अंतिम लक्ष्य है सार्वजनिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाना। एक स्वस्थ समाज तभी विकसित हो सकता है, जब सभी वर्गों को पर्याप्त और पोषक तत्वों से युक्त आहार मिल सके। यह आहार विभिन्न पोषक तत्वों से भरपूर हो, जो शारीरिक तथा मानसिक विकास के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण होते हैं।

सार्वजनिक स्वास्थ्य में योगदान के कुछ प्रमुख पहलू

कुपोषण की समस्या का समाधान: भारत में कुपोषण एक गंभीर समस्या है। पोषण संवेदी कृषि के माध्यम से किसानों को पोषण से भरपूर फसलें उगाने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है, जिससे कुपोषण को कम करने में मदद मिल रही है। उदाहरण के लिए, आयरन और जिंक से भरपूर अनाज और सब्जियाँ कुपोषण की रोकथाम में सहायक हो सकती हैं।

स्थानीय खाद्य प्रणाली का सुधार: पोषण संवेदी कृषि स्थानीय खाद्य प्रणालियों को बेहतर बनाती है। जब किसान स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार पोषक तत्वों से युक्त फसलें उगाते हैं, और स्थानीय समुदायों को स्वस्थ आहार प्राप्त होता है,तथा उनका स्वास्थ्य बेहतर होता है।

मातृ और शिशु स्वास्थ्य में सुधार: पोषण से भरपूर आहार विशेष रूप से गर्भवती महिलाओं और शिशुओं के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। पोषण संवेदी कृषि से प्राप्त खाद्य पदार्थों से इनकी पोषण आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है, जिससे मातृ और शिशु मृत्यु दर में कमी आएगी।

बीमारियों की रोकथाम: संतुलित और पोषण से भरपूर आहार से कई बीमारियों, जैसे मधुमेह, हृदय रोग, और मोटापा, की रोकथाम की जा सकती है। पोषण संवेदी कृषि स्वस्थ जीवनशैली को बढ़ावा देती है, जिससे लोग इन बीमारियों से बच सकते हैं।

सरकार और संगठनों की भूमिका

सरकार और विभिन्न संगठनों ने पोषण संवेदी कृषि को बढ़ावा देने के लिए कई नीतियाँ और कार्यक्रम शुरू किए हैं:

राष्ट्रीय पोषण मिशन: यह मिशन पोषण संवेदी कृषि के जरिए लोगों को पौष्टिक आहार उपलब्ध कराने की दिशा में काम कर रहा है।

कृषि पोषण जागरूकता कार्यक्रम: कृषि विस्तार सेवाओं के तहत किसानों को पोषण संबंधी जानकारी प्रदान करने के लिए जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं।

स्वस्थ भारत अभियान: इस अभियान के तहत लोगों को संतुलित और पौष्टिक आहार के महत्व के बारे में जागरूक किया जा रहा है।

निष्कर्ष

पोषण संवेदी कृषि और कृषि विस्तार सेवाएँ मिलकर एक स्वस्थ समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। किसानों को पोषण के प्रति जागरूक करके और उन्हें पोषण से भरपूर फसलें उगाने के लिए प्रोत्साहित करके न केवल उनकी आजीविका में सुधार किया जा सकता है, बल्कि समाज में कुपोषण और अन्य स्वास्थ्य समस्याओं को भी कम किया जा सकता है। कृषि और सार्वजनिक स्वास्थ्य के इस संबंध को मजबूत बनाना ही एक समृद्ध और स्वस्थ भारत की दिशा में कदम है।

******

पोली हाऊस मे शिमला मिर्च का उत्पादन

विक्रांत एवं अविनाश तोमर
सब्जी विज्ञान संभाग, आईसीएआर-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

पोली हाऊस में उगायी जाने वाली सब्जियों में शिमला मिर्च का प्रमुख स्थान है, रंगीन शिमला मिर्च की मांग बड़े शहरो, होटलो एवं शादी समारोहो में लगातार बढ रही है, यह अधिक लाभ देने वाली फसल है, एवं इसका गुणवत्तायुक्त उत्पादन केवल पोली हाऊस में ही संभव हो पाता है। पोली हाऊस में शिमला मिर्च की सफल खेती निम्न प्रकार से की जा सकती है।

उन्नत किस्में

लाल शिमला मिर्चः- बौम्बी, नन 3019, नताषा, टोरकल, महाभारत, तनवी प्लस, बचाटा

पिली शिमला मिर्चः- स्वर्णा, फिएस्टा, नन 3020, औरोवेले, यू.एस. 26, परसिलीया

हरी शिमला मिर्चः- इन्दिरा, भारत, केलिफोर्निया वन्डर, ग्रिनगोल्ड

तापमान एवं आर्द्रता

शिमला मिर्च जलवायविय कारको से अत्यधिक संवेदनषिल फसल है, अतः इसकी खेती अन्य सब्जियों की अपेक्षा कठिन होती है। पौधो की सामान्य वृद्धि के लिए 20-25 से मृदा ताप उपयुक्त रहता है। फलस्थापन के लिए दिन का तापमान 20-22 से. एवं रात का तापमान 18 से. उपयुक्त होता है। आपेक्षित आर्दता 75-80 प्रतिषत वाछित होती है।

नर्सरी तैयार करना

एक हजार वर्ग मीटर क्षेत्र में शिमला मिर्च के 3000 पौधो की आवश्यकता होती है। नर्सरी उठी हुई क्यारियों अथवा प्रो.ट्रे में तैयार की जा सकती है। क्यारियों में पौध तैयार करने से कवक जनित मृदो रोगों के फैलने का अंदेशा रहता है, क्योकि शुरूआती अवस्था में पौधे इन रोग कारको से अति संवेदनषिल होते है। अतः जहां तक सम्भव हो पौध प्रो.ट्रे मे ही तैयार करनी चाहिए। सर्वप्रथम पो.ट्रे को साफ पानी से धोकर 2 घन्टे धूप में सुखाना चाहिए अथवा पो.ट्रे का निर्जलीकरण करना चाहिए। तत्पष्चात प्रो.ट्रे में वर्मीकुलाइट, परलाइट एवं कोकोपिट का मिश्रण क्रमषः 1:1:2 के अनुपात में (आयतानुसार) भरना चाहिए। मिश्रण में पर्याप्त पानी मिलाना चाहिए। इस मिश्रण में इतना पानी मिलाना चाहिए जिससे यह मिश्रण हाथ में लेकर भरा जा सकें। प्रो.ट्रे में मिश्रण करने के बाद प्रति कक्ष में एक बीज बोना चाहिए। बीज कोष्टिका के बीच में डालना चाहिए। बीजाई के तुरन्त पश्चात हजारे की सहायता से पानी देना चाहिए। अकुरण के लिए तापमान एंव नमी का पर्याप्त बना रहना आवश्यक होता है, इसलिए बीजाई के बाद प्रो.ट्रे के उपर थर्माकोल अथवा पालीथिन से ढकी जाती है, मौसम के अनुसार दो या तीन दिन बाद ढकी हुई परत हटा लेते है, एवं प्रतिदिन एन.पी.के. 19:19:19: का एक प्रतिशत (1 किलोग्राम एन.पी.के. 100 लीटर पानी में घोल बनाकर)

विलयन बनाकर पानी डालना चाहिए। सामान्यतया 30-35 दिन बाद पौध स्थानान्तरण योग्य हो जाती है। इस अवधी में प्रो.ट्रे को जमीन के उपर नही रखना चाहिए अन्यथा पौधे की जडे मृदा के अन्दर चली जाती है, एवं पौध निकालते हुए जड़े टुटने का खतरा रहता है अतः प्रो-ट्रे को लकड़ी अथवा लोहे का स्टेण्ड बनाकर रखा जाता है।

रोपाई के लिए क्यारिया तैयार करना

पौध स्थानान्तरण योग्य हो, उससे पहले पोली हाऊस में क्यारियां अच्छे से तैयार करनी चाहिए। इसके लिए 1 मीटर चौडी एवं 30 सेमी ऊची क्यारिया बनायी जाती है, क्यारियों की लम्बाई पोली हाऊस के आकार पर निर्भर करती है। क्यारियां बनाते समय दो क्यारियों के बीच 60 सेमी. का पथ रखा जाता है। जिससे कर्षण कार्यो में सुविधा रहती है। तैयार क्यारियों का रोपण से दो दिन पहले निर्जलीकरण किया जाता है, इसके लिए कॉच की प्लेट (पेट्रिडिश) में 8-10 ग्राम पोटेशियम परमैगनेट के क्रिस्टल डाले जाते है। तथा पूरी बेड को पालीथिन से ढक दिया जाता है। तत्पश्चात प्रत्येक पेट्रिडिश में 5-7 मिली लिटर फोर्मेलिन डाल दिया जाता है । इससे तुरन्त गैस निकलती है, जिससे मृदा में उपस्थित हानिकारक सुक्ष्मजीव नष्ट हो जाते है।

फर्टिगेशन

सामन्यतयाः शिमला मिर्च के लिए 250 किग्रा. नत्रजन, 125 किग्रा. फास्फोरस एवं 125 किग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता है। अतः प्रति 1000 वर्ग मीटर क्षेत्र में प्रति सप्ताह 5-7 किलोग्राम जल में घुलनशील उर्वरक मिश्रण देने से पौधो की बढवार अच्छी रहती है, एवं उपज भी अच्छी प्राप्त होती है। प्रारम्भिक चार-पांच सप्ताह 2-3 किग्रा. एन.पी.के. 19:19:19 एवं उसके बाद धीरे-धीरे उर्वरक मिश्रण बढाया जाता है। फल बनते समय सुक्ष्म पोषक तत्वों का मिश्रण जैसे एग्रोमिन अथवा बायोविटा इत्यादि लगभग 1 किलोग्राम प्रति हजार वर्ग मीटर के हिसाब से डालना चाहिए।

पौधो का प्रशिक्षण एवं कृन्तन

40-50 दिन तक पौधों की सामान्य बढवार होने के बाद पौधो मे ट्रेनिग एवं कटिंग शुरू की जाती है। इसके लिए प्रत्येक पौधो पर केवल 2-3 शाखाओं को छोड़कर अन्य शाखाओं को हटा दिया जात है, तथा पौधों को सूतली अथवा प्लास्टिक की रस्सियों के सहारे बढाया जाता है। कृन्तन करते समय पास-पास वाली शाखाओं को एवं कमजोर शाखाओं को हटा दिया जाता है।

उपज

पोली हाऊस में षिमला मिर्च की फसल 8-9 महीने चलती है, एवं पौधा रोपण के 3-4 महीने बाद फल तोड़ने लायक हो जाते है। एक पौधे से 6-7 किलोग्राम तक उपज हो जाती है।

■■■

ISSN: 3049-2211

कृषक मंच - नवम्बर 2025 संस्करण

लोकप्रिय लेखों के लिए आमंत्रण

वेबसाइट: krishakmanch.com

अंतिम तिथि: 28 नवम्बर 2025

लेख के विषय:

- कृषि विज्ञान के प्रमुख क्षेत्र: एग्रोनॉमी, बागवानी, कीट विज्ञान, रोग विज्ञान, कृषि प्रसार, कृषि अर्थशास्त्र, जैव प्रौद्योगिकी आदि।
- नवीनतम कृषि तकनीकें।
- फसल प्रबंधन एवं रोग नियंत्रण।
- जैविक खेती एवं प्राकृतिक कृषि।
- जल संरक्षण व सिंचाई तकनीकें।
- सरकारी योजनाएं।

हमारे व्हाट्सएप समूह से जुड़ें: